श्रीवंशीअलीजी विरचित

श्रीवृषभानुपुर शतकम्

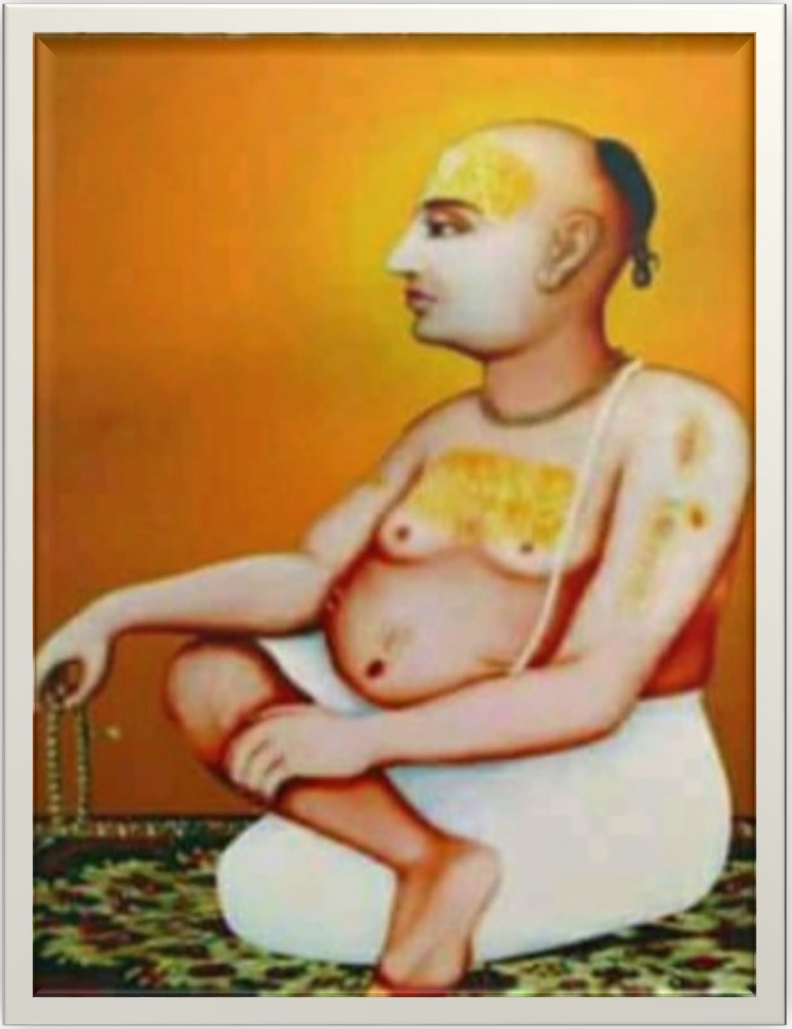

ललित सम्प्रदायाचार्य गोस्वामी

श्रीवंशीअली जी महाराज

श्रीवृषभानुपुर शतकम्

प्रथम पुष्प

श्रीराधा पद पद्म रस, पगी रसीली भूमि ।
प्रणवों श्री वृषभानुपुर, लता लूम रही झूमि ॥
बन्दौं श्री वृषभानुपुर, सर्वोपरि अभिराम ।
हरिपुर ते गरुवौ महा, श्री बरसानौ नाम ॥

प्रथम संस्करण – २,००० प्रतियाँ

प्रकाशित ५ जनवरी २०२१

सप्तमी, कृष्णपक्ष, पौष, २०७७ विक्रमी सम्वत्

प्राप्ति-स्थान

मान मन्दिर, बरसाना

फोन – ९९२७३३८६६६

एवं

श्रीराधा खंडेलवाल ग्रन्थालय

अठखम्बा बाजार, वृन्दावन

फोन – ९९९७९७७५५१

श्री मानमन्दिर सेवा संस्थान

गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)

फोन – ९९२७३३८६६६

http://www.maanmandir.org

info@maanmandir.org

आमुख

पुरातन संस्कृति, साहित्य व सत्पुरुषों के संग की अनदेखी ने जीव की जीवनचर्या बदल दी और हम अपने परमोद्देश्य से भटक गये । समय-समय पर महापुरुषों का अवतरण लोक-कल्याण के लिए प्रभु-इच्छा से हुआ करता है और वे पथ-प्रदर्शक बनकर अपने कृतित्व व व्यक्तित्व से जीवमात्र का मंगल किया करते हैं; इन्हीं में एक परम वीतराग महापुरुष अनन्य बरसाना-उपासी 'श्रीवंशीअलीजी महाराज' हुए, जिनके द्वारा देश भर में अनेक राधारानी के मन्दिरों की स्थापना हुई एवं राधानाम व राधा-धाम का प्रचुर प्रचार हुआ । आपकी कृतियों में प्रस्तुत 'वृषभानुपुर शतक' नाम्नी अलौकिक कृति रस की अगाध सरसी है, प्रस्तुत कृति बरसाना-माहात्म्य के साथ-साथ श्रीराधामाधव के अद्भुत अप्राकृत माधुर्यमयी लीलाओं की संचिका होने से बरसाना-रस की एकमात्र अद्भुत दर्शिका है । यह अनुपम कृति 'वृषभानुपुर शतक' १९५३ में प्रयाग से ब्रज-बरसाना आकर रहे अनन्त श्रीयुत परमपूज्य श्रीरमेशबाबाजी महाराज को 'गह्वरवन' में 'गोपाल कुटी' से प्राप्त हुई । पूज्य बाबा ने इस अद्भुत रचना के ६० श्लोक अपनी किसी पुस्तिका में लिख लिये परन्तु वह अधूरा ग्रन्थ उन्हें निरन्तर उसे पूर्ण करने की प्रेरणा देता रहा। पूज्य श्री अपने अनुगतों को बराबर उक्त ग्रन्थ के खोज की प्रेरणा देते रहे । अन्तोगत्वा जयपुर के श्रीजी मन्दिर के सेवायत गोस्वामी श्री संजयजी महाराज के पास से शेष श्लोक प्राप्त हुए । ग्रन्थ के सुलभ होने पर ब्रज विभूति पूज्यपाद श्रीरमेश बाबा जी महाराज को अत्यन्त हर्ष हुआ और इसे प्रकाशित करने की आज्ञा दी; उनकी आज्ञानुसार बाबाश्री के जन्मदिवस पर ग्रन्थ का प्रकाशन कराया जा रहा है । इसके प्रकाशन से पाठक निश्चित ही श्रीराधा से सर्वथा अभिन्न बरसाना-रस में अवगाहन कर कृत-कृत्य होंगे, ऐसा विश्वास है ।

राधाकान्त शास्त्री

...अनुक्रमणिका...

- पृष्ठ संख्या -

नमामि ब्रजोद्धारकम् ०१
वृषभानुपुर बरसाना ०६
ग्रन्थकार परिचय ०७
आभार परिचय १०
अनुवादक के दो शब्द ११
परात्पर तत्व श्रीराधा १४
श्रीवृषभानुपुर शतकम् १६

श्लोक-संख्या सूचिका

अ

अनंगरंगोत्सवसार पूरितं.....१०
अविनिश्चितरूपमाधुरी १८
ओष्ठाभ्यां परिचुम्बति मधुरं २२
अतिहर्षितदृक्तनुरुहो २३
अप्रतर्क्या किशोरस्य २४
अधिरुह्य धवांसमुच्चवृक्षात् ३६
अतिनम्रसुमुद्रया स्थितं ४५
आपाययित्वाधरसंश्रितं मधु ४६
आंदोलमानाचययुज्जगान ६५
अंगुष्टतर्जनीभ्यामी ७०
अतितृष्णमना निजप्रियां ८६

उ

उष्णीषं परिवध्य ६२
उन्मुच्य केशान्यमुनान्ति.....९५

क

करपंकजसंपुटे स्थितं २१
कृष्णं निधाय पदयोः २८
कच्चित्सुधाधारमुखावलोकना ...४२
क्वचित्सुपुष्पव्यजनंदधत्करे ५५
कुसुमसुंगफित वेणीपीन ६७
क्रीडन्त्यानवकुंजमंजुलगृहे ६९
कदा वा खेलंत्या ७४
कुचाचलेंद्रोपरिमालिका ७७
किं कार्यं वत राधे ८९
कर्पूर पूगसम्मिश्रं ९२
किशोर युगलं ९६
किसलयतल्पे ९७

ग

गुंजद्भृंग कुलाम्बुजातमुकुलं ०९
गतावस्थां चलनाक्षमौजडां ५८
गृहीत्वा ललिता हस्तं ९४

च

चलत्पदस्पर्शमवाप्य सास्थली ०६

ज

जयत्यशेषाद्भुतमाधुरी सा ०१
जहार राधा शिरसः शिखण्डकं ...२६
जयत्रपाफुल्लविनम्रवक्त्रका ३५

त

तमालसंवेष्टितहेमयूथिका १३
ताम्बूलनिर्यासकपोलशोभितौ ३९
त्वं वनराज ! किशोरीचरण ५२
तौ नृत्यमानौ प्रतिबद्ध चक्षुषौ ५७

द

द्वयं गृहीत्वा २९
दृष्ट्वा तथाविधं .....…६१

न

न याति तृप्तिं शतशोथ घुष्टं ०२
निधेहि पदपंकजयुगं मम प्रिये १९
निपीय राधामुखनिःसृतासवं ३८
निधाय वक्षसि शिरः ४३
निजांगसंगोत्थरतामृतांबुधौ ४७
नेत्रे बुभुक्षिते मे .....…५३
नीलालकंपरिविलोक्यकपोलपार्श्वे ७१
नीलांबरागुंठितमुख्यगात्री ७३
नासासंस्थित मौक्तिकद्वय ७९
निजहृदये प्रतिबिम्बं ८०
नमस्येहं लोकं १००

प

पादन्यासवशाद्गता ०५
पीत्वा मुखाम्बुज श्री १५
पदयोः प्रविलाप्य यावकं १७
प्रवदति राधाराधेत्यति २५
प्रबोधितावंगुल चालनादिभिः ४१
प्रियहारं सुहारेण ४४
प्रस्वेदकणिकायुक्तं मुखं ४८
पिवत्यतृप्तो विवशः प्रियास्यजं ४९
प्रेष्ठं कंचुकि शाटके ६३
प्रियवक्षः स्थितमालामुत्तार्य ७२
प्रियस्यवक्षःस्थलपट्टिकोपरिस्थिता …७६
पार्श्वालम्बितवक्रकेश ७८
प्रियपाणि तलेस्वकं करं ८५
प्रियहस्ताद् गृहीतेन ९३

ब

बोधयंतौ हि मां वश्यात् ३३
बद्धुं प्रवृत्ता निजहारतोय ८१

म

मृदुपद्मपदे मनोहरः २०
मम हारं सुसंगृह्य ३२
ममाविरास्तां वृषभानुजा सखी ५४
मध्याह्ने ह्यधिकुञ्जसद्म ५६
मज्जीवातुरिहारित साऽसिततनो ६६
मत्पादयोः पतित्वा ब्रवीति ८८
मधूपभोगसम्फुल्ल ९८
मेघपुष्पकणभ्राजत् ९९

य

यत्रास्ति श्रीमद्वृषभानुमन्दिरं ०३
यत्र गह्वरकं नाम ०७
योगे वियुक्तवन्मानि १२

र

रूपं यल्ललितं द्वयोश्चमिलनं १४
राधायाः सुविनिःसृता २७

ल

ललिताललितानंदमूर्तिः ०८

व

वैदूर्येण विनिर्मिता ०४
वियोज्यते वियुक्तं वा ११

व्यत्यस्तवस्त्राभरणौ प्रजागराद् ४०
विकीर्णवर कुंतलां ५०
विदग्ध मिथुनं दृष्ट्वा ५९
वभ्रात्यसौ मालिकया करद्वयं ८२
वपुर्मनो वागसवस्त्वयि प्रिये ८३
विचित्र वल्लीतरु राजिराजिते ९०

श

शय्यां निर्माय दलकैः १६
शय्या भूत्वा स्थिता चाहं ३१
श्रीमत्कुंजसुरद्रुमं मञ्जुललतां.....६४
श्रुत्वा नूपुर सिञ्जितं विहरतोः ८४

स

स्वांचलेनैव चावृत्य ३०
सखी ममेयं वरदास्यवर्तिनी ३४
संस्पृश्य तत्पादतलं किशोरकः ३७
सगायमानां प्रविलोक्यराधिकां ६०
सख्या नीतां मालां ६८
सखीवृंदवृता राधा ७५
स्वकरे सितचामरन्दधद् ८७
सखीजनोद्गीत वधूगुणोत्करे ९१

ह

हे गह्वरवन मध्येहृदयं ५१

नमामि ब्रजोद्धारकम्

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना, नासावृषिर्यस्यमतं न भिन्नम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

(महाजन वन पर्व ३/१३/११७)

न श्रुतियों में मतैक्य है, न स्मृतियों में ही ।

मुनियों के मत में भी ऐक्य कहाँ ?

धर्म का तत्व तो गुहा में ही छिपा हुआ है ।

तब कैसे ढूँढें ? कहाँ जायें ? क्या करें ?

व्यथित होने की आवश्यकता नहीं, ये महापुरुष जिस मार्ग का सृजन करते हुए गये हैं, आरूढ़ हो जाओ उस मार्ग पर जहाँ **'न स्खलेन्न पतेदिह'** – न स्खलन का भय है, न पतन का ही फिर हम जैसे भ्रान्त-परिश्रान्त पथिकों के लिए इन महापुरुषों का देदीप्यमान जीवन-चरित्र ही तो निर्भ्रान्त पथ-प्रदर्शक है ।

धन्य तो है इस वसुंधरा का पवित्र अंचल जो सदा से संत-परम्परा से विभूषित होता रहा है ।

महाकवि भवभूति की भविष्य वाणी –

'उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समान धर्मा ।
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥'

ऐसी पावन परम्परा में, संसार प्रवास की स्वल्पावधि में विपुल लोकोपकार करने वाले इन महापुरुष का अवतरण भी किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति हेतु ही हुआ है ।

आंशिक झलक –

भक्तिमती श्रीमती हेमेश्वरी देवी तथा श्रीबलदेवप्रसाद शुक्लजी की दीर्घकालीन शिवाराधना से जगतीतल पर प्रथम प्रभात देखा ।

अन्न-प्राशन के दिन प्रवृत्ति-परीक्षा हेतु बालक के सामने अन्न, द्रव्य, वस्त्र, शस्त्र और धर्म-ग्रन्थ जब रखे गये तो 'श्रीमद्भगवद्गीता' के अतिरिक्त बालक को सब कुछ अलक्षित ही रहा; झट से गीता को उठाया और मुख में भर लिया, गीता का सचल स्वरूप जो ठहरे । पिता ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित थे ही, क्षणभर में बालक का ललाट पढ़कर माता से बोले – यह बालक केवल तुम्हारे लिए ही उत्पन्न नहीं हुआ है, विशेष कार्य की सिद्धि के लिए अवतरण हुआ है इसका ।

शनैः-शनैः अप्रतिम प्रतिभा भी प्रकट होने लगी । शैशव से ही बड़ा धीर, गम्भीर व्यक्तित्व रहा ।

एक बार पिताजी के साथ मदनमोहन मालवीयजी के घर भजन कार्यक्रम में गये । पिताजी के घनिष्ठ मित्रों में थे - महामना श्रीमदनमोहन मालवीयजी, बालक के गाम्भीर्य को देख बोले – शुक्लजी ! यह अलौकिक बालक संसार में प्रवृत्त नहीं होगा ।

अभी साढ़े चार वर्ष की अल्प-सी अवस्था थी कि पिता दिवङ्गत हो गये । यह असामयिक अवसान (देहान्त), माताजी के लिए असह्य अवसाद (शोक) का कारण बना किन्तु बालक का तो जैसे "समत्वं योग उच्यते" का पाठ पढ़कर ही प्रादुर्भाव हुआ था । परम वैराग्य, महान त्याग, अभूतपूर्व उत्कण्ठा और प्रभु के प्रति विलक्षण छटपटाहट निरन्तर बढ़ ही रही थी । रह-रहकर श्रीमन्महाप्रभु का अद्वैताचार्य के प्रति उपदेश स्मरण हो आता –

"विना सर्वत्यागं भवति भजनं न ह्यसुपतेः"

सर्वत्याग के बिना भगवान् का भजन नहीं होता है । इस उपदेश की स्मृति से गृह-त्याग की भावना और तीव्र हो उठती ।

सोलह वर्ष की सुकुमार अवस्था में गृहत्याग का कठोर संकल्प भी दृढ हो गया । स्थिति यह हो चली थी कि –

दिन नहिं भूख, रैन नहीं निद्रा, यो तन पल पल छीजै ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, मिलि बिछुरन नहिं दीजै ॥
सजन ! सुध ज्यूँ जाणौं त्यूँ लीजै ।

निस्तब्ध रात्रि, बलुआ घाट (इलाहाबाद) पर बैठ जाते और निहारते रहते यमुना की नीली धारा ! न जाने कौन-सी कहानी कह देती ये सरिता की लहरें कि नेत्रों से अविराम अश्रुप्रवाह होता रहता । कृष्ण-स्पर्श से पुलकित और आनन्दित होकर यह वही यमुना हैं जो ब्रज से चली आ रही हैं फिर प्रेम में तो प्रत्येक वस्तु-पदार्थ प्रियतम के रूप में ही प्रतिभासित होता है । समुद्र का नीला जल 'यमुना' और चटक पर्वत 'गिरिराज रूप' हो गया श्रीमन्महाप्रभु के लिए ।

एक जैसी ही होती है सब महापुरुषों की अन्तःस्थिति ।

अद्भुत है यह प्रेमोन्माद !

काहां करों काहां पाओं ब्रजेन्द्रनंदन ।
काहां मोर प्राणनाथ मुरलीवदन ॥
काहारे कहिव केवा जाने मोर दुःख ।
ब्रजेन्द्रनन्दन बिनु फाटे मोर बुक ॥

(चै.चरि.मध्य.लीला.२.परिच्छेद १४, १५)

किसी से कहना-सुनना तो व्यर्थ है और फिर किसकी सामर्थ्य है जो इस स्थिति को समझ सके ?

विरह कथा कासूं कहूँ सजनी, बह गई करवट ऐण ।
दरस बिन दूखण लागे नैन । (मीराजी)

ब्रज की ओर बढ़ते कदम –

धाम-धामी के साक्षात्कार की चिर अभिलाषा ने अन्ततः गृहत्याग करा ही दिया। इष्ट के भरोसे भागे, बिना टिकट ट्रेन में बैठने पर टी.टी. ने पकड़ा और हथकड़ी डाल दी। मुकदमा जज के सामने पेश हुआ। अब क्षण भर का विलम्ब भी असह्य हो रहा था मन को, अश्रुपूरित नेत्र कुछ अरुण हो उठे, ओष्ठ भी फड़कने लगे।

'तुम बिना टिकट ट्रेन में चढ़े', जज ने केवल इतना ही पूछा।

'जी हाँ, मेरे पास पर्याप्त द्रव्य नहीं था, जो है वह इतना ही है', कहकर 'दो-चार आने' उसकी मेज पर बिखेर दिये। 'आप यह ले लें और मुझे तुरन्त छोड़ दें, मैं ब्रज-दर्शन को निकला हूँ।'

वाणी में एक छटपटाहट व अवरोधों के प्रति रोष था। जज को छोड़ना पड़ा।

अवरोधों को चीरते हुए लक्ष्य की प्राप्ति की।

वनवास के बाद मिला ब्रजवास –

इतनी सहज नहीं है यह प्राप्ति।

अब से साठ वर्ष पूर्व कैसा रहा होगा चित्रकूट का अरण्य-स्थल।

इतनी सघनता थी कि ढूँढने पर भी पथ न मिले। इतना विस्तार कि दौड़ने पर भी छोर न मिले। बाँके सिद्ध की गुफा, ददरी का जंगल, मारकुण्डी आश्रम, शरभंग आश्रम, अमरावती, सुतीक्ष्ण आश्रम, अनुसूया आश्रम, बिराध कुण्ड, भरत

कूप आदि दुर्गम स्थलों की चमत्कारपूर्ण यात्रा ने भी एक नवीन इतिहास रचा । अब बारी थी उस चिरप्रतीक्षित धरा की प्राप्ति की, जहाँ वह रसमय ब्रह्म नित्य लीलायमान है ।

प्रियतम के प्राकट्य स्थल ब्रजमण्डल में प्रवेश करते ही प्राणों में अनन्तानन्द सिन्धु उच्छलित हुआ – अ हा हा ! दिव्य है यह भूमि !

अद्भुत है यहाँ रस का अखण्ड प्रवाह !

यहाँ का चराचर 'रस का मूर्त रूप' है ।

रस-वैभव सम्पन्न इस धाम का दर्शन कर सद्यः मन अपने संकल्प के लिए दृढ़ हो गया । बस फिर क्या था, श्रीजी के अन्तरंग परिकर, ब्रजरस-रसिक पूज्य बाबा श्रीप्रियाशरणजीमहाराज का सानिध्य प्राप्तकर 'अखण्ड ब्रजवास' जीवन का व्रत हो गया ।

ब्रज का संरक्षण, संवर्द्धन करते हुए सम्पूर्ण जीवन ब्रज-सेवार्थ समर्पित करने वाले इन महापुरुष का तपोमय जीवन भक्तिपथ के सर्वविध पथिकों के लिए अनुकरणीय बन गया ।

गंगा की भाँति निर्मल, हिमाञ्चल की भाँति अचल, भास्कर की भाँति तेजस्वी, शिशु-सी सरलता, जल-सी तरलता, वृक्ष-सी सहिष्णुता – गीता का सही प्रतिनिधित्व करने लगा यह व्यक्तित्व ।

महाभाग्यवान हैं वे जन, जिन्होंने आपका साक्षात्कार किया है, कर रहे हैं और करेंगे ।

अन्तहीन है यह प्राण कथा .....

फिर यह चरित्र लिखने की क्षमता, पटुता व सच्चरित्रता भी तो नहीं है ।

आपके श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणति...!!!

वृषभानुपुर 'बरसाना'

"बीस कोस वृन्दाविपिन पुर वृषभानु उदार ।"

बीस कोसीय वृन्दावन में उदारतापूर्वक रस की निरन्तर वृष्टि करने से 'बरसाना', श्रेष्ठ पर्वत-चोटी होने से 'वरसानु', बड़ी शिखर होने से 'वृहत्सानु' और ब्रजाधिप श्रीवृषभानुजी की राजधानी होने से यह स्थल 'वृषभानुपुर' नाम से जाना गया । पौराणिक काल में महर्षि शाण्डिल्य द्वारा निर्दिष्ट प्रमुख स्थानों में वृहत्सानु (बरसाना) का उल्लेख प्राप्त होता है – **'नन्दिग्रामे बृहत्सानौ कार्या राज्यस्थितिस्त्वया ।**

(स्कन्दपुराणोक्त भागवत-माहात्म्य १/३८)

जहाँ से श्रीकृष्ण-प्रपौत्र श्रीबज्रनाभजी द्वारा सम्पूर्ण ब्रज की स्थिति देखी गई । श्रीबज्रनाभजी के बाद ग्यारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में अप्राकृत चिन्मय रस भक्ति के प्रथम आस्वादक श्रीजयदेवजी अपने काव्य 'गीत-गोविन्द' में **'राधे गृहं प्रापय'** कहकर वृषभानु-गृह (बरसाना) का स्मरण करते हैं । इसके बाद संवत् १३५६ में 'श्रीभट्टजी' युगल शतक (आदि वाणी) में **"ब्रजजन गोपी गोपगण नन्दादिक मन मोद, सुनत जनम राधा चले मिलि बरसाने कोद ।"** इस प्रकार बरसाने का स्मरण करते हैं । इसके पश्चात् वृन्दावन-महिमा के अद्वितीय गायक श्रीमहावाणीकार श्रीहरिव्यासदेवाचार्यजी ने श्रीराधारानी की जन्मलीला द्वारा, बरसाना-लीला द्वारा बरसाना-माहात्म्य का गान किया है –

"नखत विशाखा रुचिर में अरुणोदय सुखदाय ।
भादों शुक्ला अष्टमी प्रिया जनम जस गाय ॥"

इसी प्रकार अनन्य निकुँजोपासक स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज **"सुबस बसो यह गाँवरो"** द्वारा ब्रजांग (बरसाना-माहात्म्य) गाते हैं एवं राधाचरण-प्रधान-उपासक श्रीहितहरिवंश महाप्रभु **"चलो वृषभानु गोप के द्वार"** वृषभानुपुर 'बरसाना' चलने की बात कहते हैं । अनुवर्ती आचार्यों में श्रीहरिरामव्यासजी 'बरसाना' को वृन्दावन-

रस का उद्‌गम-स्थल कहते हैं – **"धनि वृषभानु धन्य बरसानो, धनि राधा की माय । जहाँ प्रगटी नटनागरि खेलत, पति सों रति पछताय ॥ जाके परस सरस वृन्दावन, बरसत रसनि अघाय । ताके शरण रहत काको डर, कहत व्यास समझाय ॥"**

न केवल ब्रज का केन्द्र प्रत्युत श्रीराधारानी की जन्मलीला व स्थायी लीला की महिमा से **"बरसाना"** रस का वह केन्द्र है जहाँ से प्रवहमान रसधारा श्रीवृन्दावन सहित ८४ कोस को आप्लावित कर रही है अर्थात् श्रीमद्‌वृन्दावन-रस का मूल 'श्रीबरसाना' ही है । संक्षेप में यही कि 'दानलीला, रासलीला, निकुञ्जलीला, महल-लीला, बधाई-लीला' सबका केन्द्र 'वृषभानुपुर' अर्थात् 'बरसाना' है ।

"गहवरवन और खोर साँकरी गलियन लीला होय ।
अनुभव तब ही होत है भाव सरस हिय पोय ॥"

जिसका अनुभव समय-समय पर अधिकारी जनों द्वारा देखा गया है ।

ग्रन्थकार-परिचय –

मध्य युग के बाद बरसाने के रसात्मक स्वरूप का पुनः जिन महापुरुषों ने अनुभव किया, प्रस्तुत ग्रन्थ के रचनाकार **ललितसम्प्रदाय-प्रवर्तकाचार्य** गोस्वामी श्रीवंशी अलीजी महाराज, जिनका जन्म आश्विन शुक्ल प्रतिपदा विक्रम संवत् १७६४ को सारस्वत ब्राह्मणकुल में सुनाम धन्य श्रीप्रद्युम्नगोस्वामीजी के घर श्रीमती कृष्णावतीजी के गर्भ से दिल्ली स्थित लाडलीजी के मन्दिर (बड़ा मन्दिर) में हुआ । आप जन्म से अलौकिक प्रतिभावान थे । बाल्यकाल में ही सम्पूर्ण वेद-शास्त्र व अनेकों संस्कृत ग्रन्थों को आपने हृदयङ्गम कर लिया था, तर्कशास्त्र के अद्वितीय विद्वान थे, श्रीमद्भागवत के कठिन श्लोकों का वैदुष्यपूर्ण जब व्याख्यान करते तो बड़े-बड़े दिग्गज पण्डित भी हतप्रभ हो जाते।एक समय जयपुर के तत्कालीन शासक महाराज जयसिंह को गोस्वामी श्री प्रद्युम्न जी के दर्शन की इच्छा हुई । राजा ने विनम्रतापूर्वक उन्हें अपने दरबार में बुलाया । पिता के साथ दस वर्षीय वंशी अली जी भी साथ में आ गए । श्री राधा गोविन्द देव जी के मन्दिर प्रांगण में महाराज जयसिंह ने विद्वत समाज के समक्ष अपनी एक जिज्ञासा रखी कि भगवान् श्रीकृष्ण गुरु सान्दिपनी जी से विद्या ग्रहण करने के पश्चात् गुरु-दक्षिणा के रूप में गुरु-पुत्र

लेने गये और पाञ्चजन्य (शंखासुर) का वध करके भगवान् ने शंख धारण किया किन्तु देवकी-वसुदेव को तो जन्म के पूर्व ही चतुर्भुज रूप का दर्शन करा दिया था, जो शंखादि आयुधों से सुशोभित था, तो वहाँ शंख कहाँ से आया ? महाराज जयसिंह के प्रश्न पर समस्त विद्वत्-समाज मौन था, तब पिता श्री प्रद्युम्न गोस्वामी जी ने अपने दस वर्षीय बालक की ओर देखते हुए उन्हें उत्तर देने के लिए कहा । बालक वंशीधर ने कहा – राजन् ! भगवान् के आयुध 'पार्षद' रूप होने के कारण नित्य हैं । पाञ्चजन्य को शाप मुक्त करने के लिए प्रभु ने उसका वध किया और वह मुक्त होकर अंश रूप से पुनः अपने नित्य पार्षद रूप में मिल गया, जैसे – सनकादिक मुनीश्वरों ने जय-विजय को शाप दिया था, तीन जन्म बाद पुनः मुक्त होकर अपने नित्य पार्षद रूप में जाकर मिल गए; इसी प्रकार पाञ्चजन्य भी शाप वश अपने अंश रूप से असुर बना और प्रभु के द्वारा मोक्ष प्राप्त करके पुनः नित्य पार्षद रूप को प्राप्त हो गया । दस वर्षीय बालक वंशीधर के मुख से शास्त्र-सम्मत व सन्तोषजनक यह उत्तर पाकर राजा के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, अञ्जलिबद्ध होकर पिता श्री प्रद्युम्न गोस्वामी जी से कहा – 'ये बालक साधारण नहीं है, ये तो कोई अवतरित पुरुष प्रतीत होता है । इसके उपरान्त राजा ने सम्मानपूर्वक श्री प्रद्युम्न गोस्वामी को अपार सम्पत्ति सहित जागीर भेंट की । १५ वर्ष की अवस्था में बालक वंशीधर का विवाह हुआ एवं बीस वर्ष की अवस्था में पुण्डरीकाक्ष नामक पुत्र का जन्म हुआ । वंशीधर जी पैत्रिक-परम्परा से श्रीमद्भागवत की बहुत ही सुन्दर व सरल भाषा में कथा कहते थे । कालान्तर में घर-द्वार सब छोड़कर आप श्री बरसाना धाम आ गए । बरसाना में स्थित 'पीरी पोखर' के निकट एक घूरे पर बारह वर्ष तक पड़े रहे, तब वहाँ स्वयं साक्षात् श्रीराधारानी ने आकर दर्शन दिए ।

परी रहौं वृषभानु के द्वारैं, जहाँ मेरी लाड़िली राधा ।
खेलत आवै सुख उपजावै, प्राणन की ये साधा ॥
कीरति कुल उजियारी प्यारी, हिय की चैन अगाधा ।
ठौर नहीं 'वंशीअलि' हिय में, और लगै सब बाधा ॥

इसके पश्चात् आप वृन्दावन में श्रृंगार वट के समीप ललित कुञ्ज में निवास करने लगे और यहीं श्रीराधा-आज्ञा से महासखी श्री ललिता जी द्वारा आपको मन्त्र-दीक्षा प्राप्त हुई जिसका आपने स्वयं उल्लेख किया है –

गुरुः श्री ललिता ज्ञेया सा तु तस्याः परासखी ।
तत्त्व स्वरूपा च भक्तास्या राधातोप्याधिका मम ॥

श्रीराधारानी की परा सखी श्रीललिता जी श्री वंशी अली जी की गुरु हैं और वह शिष्य वंशी अली के लिये तत्व स्वरूपा श्रीराधारानी से भी अधिक मान्य हैं । "गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूं पांय । बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो बताय ॥" का भाव ध्वनित हो रहा है तथा श्रीराधा-दर्शन में गुरु ललिता ही निमित्त हैं । इस कारण यह भावाभिव्यक्ति है ।

इस प्रकार श्री ललिता जी से दीक्षित होकर आपने 'ललित सम्प्रदाय' का प्रवर्तन किया । सम्प्रदाय के आद्याचार्य के रूप में श्री ललिता सखी को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए कहते हैं – "इस निकुञ्ज रस में न विष्णु का प्रवेश है, न ही किसी अन्य देव का; यहाँ तो केवल ललिता जी की कृपा से ही प्रवेश प्राप्त किया जा सकता है ।" कहाँ तक कहें स्वयं श्री नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण भी ललिता जू की कृपा के बिना इस दुर्लभ रस को प्राप्त नहीं कर सकते हैं । वंशी अली जी की नित्य-विहारोपासना अपने आप में विलक्षण है, जिसका प्रस्तुत ग्रन्थ 'वृषभानुपुर शतक' में विलक्षण दर्शन प्राप्त होता है जो श्रीराधारानी की कृपा से ही अवगम्य है । 'वृषभानुपुर शतक' के अतिरिक्त राधा स्तोत्र, ललिता मंगल, अष्टपदी एवं राधा सिद्धान्त आदि अनेक आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं । आपके शिष्य जगन्नाथभट्ट उपनाम किशोरी अली जयपुर महाराज के गुरु व अलबेली अली, रतन अली व रामावत अली आदि हुए । विक्रम संवत् १८२२ में आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को वृन्दावन स्थित ललित कुञ्ज में आपने ऐहिक लीला संवरण करके निकुँज-प्रवेश किया । सम्प्रति गादी पर महन्त आचार्य डा. श्री संजय गोस्वामी जी विराजमान हैं ।

अध्यक्ष
श्रीमान मन्दिर सेवा संस्थान
डॉ. राम जी लाल शास्त्री

आभार-अभिव्यक्ति

प्रस्तुत ग्रन्थ अत्यन्त उदारतापूर्वक हमें प्रदान करने के लिए ललित सम्प्रदायाचार्य डा. श्रीसंजय गोस्वामीजी के प्रति हमारी संस्था विशेष आभार व्यक्त करती है; आपने इस औदार्य से समस्त रसिक जगत को उपकृत किया है । इसके अतिरिक्त परमपूज्य श्रीबाबामहाराज की आज्ञा से अथक् श्रमपूर्वक ग्रन्थ का प्राञ्जल भाषा में अनुवाद करके ग्रन्थ को उपादेय बनाने का महनीय कार्य परम आदरणीय श्रीगोपाल जिज्ञासु ने किया है, जिसमें वैदुष्य व वैष्णवता का अद्भुत मणिकाञ्चन संयोग दिखाई देता है । स्वर्गीय पिता श्रीतुलारामजी एवं श्रीमती रामश्री देवी से वृन्दावन निकटस्थ ग्राम भरतिया में आपका जन्म हुआ । व्याकरण के उद्भट विद्वान पूज्यपाद श्रीकाशी प्रसाद शुक्लजी (पूज्य श्रीबाबामहाराज के व्याकरण-गुरु) से शिक्षा-अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ, तत्कालीन वृन्दावनस्थ विद्वत् गुरुजन पूज्यपाद श्री राम आदर्श पाण्डेय जी, पूज्यपाद श्री वैद्यनाथजी झा, पूज्यपाद श्रीशोभानन्दजी झा एवं पूज्यपाद श्रीराजवंशी द्विवेदीजी प्रभृति गुरुजनों से भी समय-समय पर पढ़ने का अवसर प्राप्त होता रहा । अनेक प्रकार की विषमताओं के रहते हुए भी आपने ३७ वर्षों तक पूर्ण निष्ठा एवं समर्पण से 'लक्ष्मीनारायण संस्कृत महाविद्यालय, प्रेमसरोवर, बरसाना' में प्राचार्य-पद से सहस्त्रों शिक्षार्थियों का मार्गदर्शन किया । सन् २००० में समूचे राष्ट्र के विद्वज्जनों की गोष्ठी में "अखिल भारतीय संस्कृत कवि प्रतियोगिता, दिल्ली संस्कृत अकादमी प्रथम पुरस्कार" से आपको सम्मानित किया गया । आलोच्य ग्रन्थ का अनुवाद करके आपने निश्चित ही हम सभी के ऊपर महान उपकार किया है, जिसके लिए हम हृदय से आभारी हैं ।

श्रीमान मन्दिर सेवा संस्थान

अनुवादक के दो शब्द

श्रीमानमन्दिर पर विराजमान अनन्त श्री विभूषित श्रीबाबामहाराज की अहैतुकी अनुकम्पा से 'श्रीवृषभानुपुर शतक' ग्रन्थ के अवलोकन-मनन-चिन्तन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । आध्यात्मिक-दृष्टि प्रदान करने वाले इस शतक के रचयिता भक्ति-ज्ञान-वैराग्य की प्रतिमूर्ति 'श्रीवंशीअलीजी महाराज' हैं । 'वंशी' भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द पर विराजमान रहकर उनके हृदयस्थ उद्गार को सरस रूपेण प्रकट करती है । काव्य के परिशीलन से अनुभूति हुई कि कृष्ण-कृपा के बिना धाम का सजीव वर्णन कदापि सम्भव नहीं हो सकता । धाम के साथ धामी का नित्य एवं विशिष्ट सम्बन्ध होता है, दोनों का तादात्म्य सम्बन्ध है जो कि त्रिकाल सत्य है । कुहक के निरसन करने की स्वाभाविक सामर्थ्य धाम में ही निहित है, इसके बिना सत्य का साक्षात्कार नितान्त असम्भव है । ग्रन्थ के प्रारम्भ में ग्रन्थकार द्वारा धाम का स्मरण करते हुए मंगलाचरण किया गया है, यथा –

"जयत्यशेषाद्भुतमाधुरी सा, पुरी बृषाहस्कर्राजकस्य ।"

श्रीराधा-माधव की अन्तरंग लीला के साक्षात्कार के बिना रस-भावमयी वाणी प्रस्फुटित नहीं हो सकती । निश्चय ही यह कृति रसिकजनों को आह्लादित करने वाली है । स्वामी योगीन्द्रानन्दजी महाराज का यह कथन – "ग्रन्थकार के समकक्ष विद्वान की व्याख्या में ही ग्रन्थ का हृदय खुला करता है" सुतरां सुसंगत है । मेरे जैसे रसभाव हीन अल्पज्ञ द्वारा किये गए अनुवाद को सत्पुरुष स्वीकार करते हैं तो यह उनकी अनुकम्पा ही है ।

ब्रजधाम के प्रति समर्पित श्रीबाबामहाराज की अप्रतिम सूक्ष्मेक्षिका शेमुषी का ही यह रसवत् फल है कि भक्ति पयस्विनी स्वरूपा यह रचना प्रकाशित हो रही है।

वंशी अली श्रील महानुभावाः स्तोत्रं प्रचक्रुः वृषभानु धाम्नः ।
गोपाल नामा विदुषां विधेयः तान्ननमीति बहुशः कृपेच्छुः ॥

आत्मनिवेदनम्

वृष रवि पुर शतकमिदम् रसिक वैष्णव जन मनो मोदकरम् ।
श्रवण मनन पठनाद्वै निखिल दुरित कक्ष हुताशनम् ॥१॥
काव्यं क्व चेदं रसिकैक सेव्यम् क्वाहं विमूढो रस भाव शून्यः ।
नूनं निदेशः परिपालनीयः वक्त्रारविन्दान्महतां विसृष्टः ॥२॥
बाबा महाराज वचो निशम्य श्रीरामजीलाल महानुभावैः ।
श्री माधवी जी शरणैर्वदान्यैः सम्प्रेरितोऽस्म्यर्थ कृते विमूढः ॥३॥
सन्त्यत्र दोषाः बहवोऽनुवादे, ते सूचनीयाः सुतरां सुधीभिः ।
अस्त्यत्र कश्चिद् गुण लेश कश्चेद्, नूनं फलं तत् महतां कृपायाः ॥४॥
गोपाल जिज्ञासु रहं विनीतः, वाञ्छाभ्यजस्त्रं महतोऽनुकम्पाम् ।
विद्याभिलाषी सततं भवेयम्, श्रीकृष्ण पादाब्ज रतश्च नित्यम् ॥५॥

विदुषां विधेयः
जिज्ञासूपाह्व गोपालः

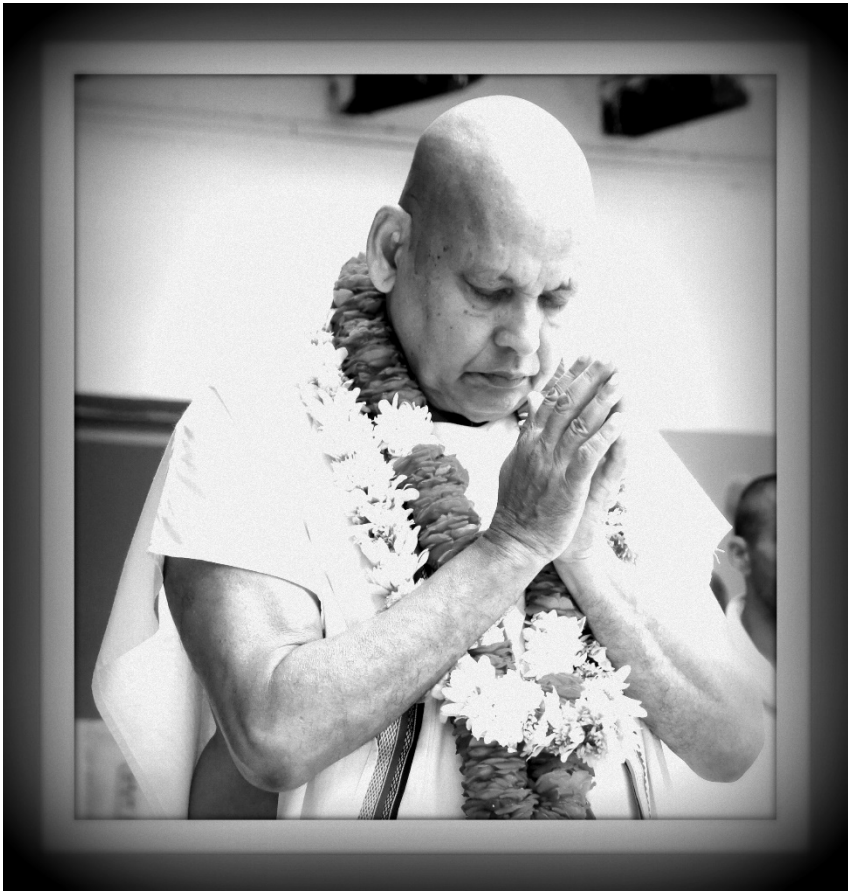

परात्पर तत्व श्रीराधा

श्रीराधा को नमस्कार है । श्रीराधा तापनी उपनिषद में ब्रह्मवादी जन कहते हैं श्रीराधा की उपासना किसलिए अथवा किससे की जाती है ? (कौन राधा ?) जिनसे सूर्य भी द्रवित होता है ।

श्रुतियाँ बोलीं – सभी देवता राधिकामय हैं, सभी भूत राधिकामय हैं; ऐसी राधिका जो हों, उनको हम नमस्कार करते हैं । देवालय भी काँपते हैं (उनसे

प्रतिष्ठित होते हैं) । सभी देवता राधाजी के साथ हँसते हैं, नृत्य करते हैं । इस प्रकार सब पापों के क्षय (नाश) के लिए व्याकृतियों द्वारा हवन करके अब राधिका को नमस्कार करते हैं, जिनके प्रकाश से देव (श्यामसुन्दर) का इन्द्रनीलमणि के समान कृष्ण-वर्ण देह भी गौर हो गया, जिनके ही प्रकाश से भौंरे, काक, कोकिलादि भी गौर हो गए, उन विश्वधात्री को (हम) नमस्कार करते हैं; जिनके अगम्य राधा स्वरूप को श्रुतियाँ, सांख्ययोग, वेदान्तादि ब्रह्मभाग बताते हैं, जिनको पुराण भी सम्यक् प्रकारेण नहीं जानते; उन देवों को धारण करने वाली 'राधिका' को नमस्कार करते है, जगद्धर्ता विश्वमोहक श्रीकृष्ण की जो प्राणाधिक (प्रिय) हैं । वृन्दावन के भक्तजनों के इष्टदेव नित्य उन राधिका को नमस्कार करते हैं, जिनके पाद-रेणु को विश्वभर्ता प्रेमयुक्त होकर एकान्त में मस्तक से धारण करते हैं, जिनमें संलग्न श्रीकृष्ण छूटे हुए वेणु एवं कवरी को भी नहीं याद करते ..... उनको (राधिका को) नमस्कार करते हैं ।

जिनकी क्रीडाओं को देखकर चन्द्रमा एवं नग्न देवाङ्गनायें भी अपने को याद नहीं करतीं । वृन्दावन में 'स्थावर एवं जंगम' जिनमें भावाविष्ट रहते हैं; उन 'राधिकाजी' को नमस्कार करते हैं, जिनकी गोद में क्रीडा करते हुये कृष्णदेव गोलोक नाम वाले धाम को भी नहीं याद करते हैं, जिनके अंश के अंश कमला, शैलजादि हैं, उन शक्ति को धारण करने वाली 'श्रीराधा' को नमस्कार करते हैं ।

स्वर, ग्राम एवं तीनों मूर्छनाओं से गाती हुई सखियों से प्रेमाबद्ध ब्राह्मीनिशा को अपनी एक शक्ति से ही व्यतीत करती हुई वृन्दावन में श्रीराधिका को नमस्कार करते हैं । कभी द्विभुजा (विपरीत लीला) कृष्ण देह वाली वंशीरन्ध्रों को मुख पर बजाती हुई, जिनके आभूषणों को कुन्द एवं मन्दार पुष्पों से माला करके देवों के देव

(श्रीकृष्ण) अनुनय करते हैं । वो राधा ये कृष्ण रससागर देह से एक, शारीरिक क्रीडनार्थ दो स्वरूप कर लिये । देह जैसे छाया से सुशोभित हुआ (निरन्तर भाव से) (इस प्रकार) सुनता हुआ, पढता हुआ उस शुद्ध धाम को प्राप्त होता है ।

उस मूल धात्री को नमस्कार है ।

श्रीवृषभानुपुर शतकम्

श्री राधा जयतितराम्

जयत्यशेषाद्भुतमाधुरी सा, पुरी बृषाहस्कर‌राजकस्य ।
यन्नामशृण्वन्ननु नन्दसूनु, व्रजत्यवस्थां जडिमाभिधानाम् ॥ १ ॥

ब्रजराज श्रीवृषभानुजी की नगरी 'श्रीबरसाना–वृषभानुपुरी' अनन्त अलौकिक माधुर्य से सम्पन्न है, जिस वृषभानुपुरी का नाम श्रवण कर नन्दनन्दन श्रीकृष्ण जड़भावापन्न अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् जडवत् स्तब्ध हो जाते हैं; वह नगरी सर्वोत्कर्षशालिनी है अतएव उसकी जय हो ।

(यहाँ 'जयति' शब्द से नमस्कार का आक्षेप होता है अर्थात् मैं उसके प्रति प्रणत हूँ । यहाँ 'वृषभानुपुरी का नाम' निर्देश पूर्वक नमन किया है, अतएव यह वस्तु निर्देशात्मक एवं नमस्कारात्मक मंगलाचरण है । ग्रन्थकार की धाम-निष्ठा अभिव्यक्त हो रही है । श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं और श्रुति के अनुसार वे "चेतनश्चेतनानाम्" है अर्थात् चेतनों के भी चेतन हैं, वही आह्लादिनी शक्ति भगवती किशोरी जी की जन्मस्थली के नाम श्रवणमात्र से जडवत् समाधिस्थ हो जाते हैं । यहाँ पर धाम के साथ परमतत्व का तादात्म्य (अभेद सम्बन्ध) द्योतित हो रहा है । श्रीबरसाना धाम एवं श्रीलाड़िली का तादात्म्य-भाव अभिव्यञ्जित है ।

"तद्भिन्नत्वे सति तदभेदेन प्रतीयमानत्वं तादात्म्यम्" अर्थात् जहाँ भिन्नता होते हुये भी अभिन्न रूप से प्रतीति होती है वह 'तादात्म्य सम्बन्ध' कहा जाता है । 'वृषभानुपुरी' के नाम श्रवणमात्र से श्रीकिशोरीजी का स्वरूप श्रीकृष्ण की चित्तवृत्ति में समाहित हो जाता है; यही 'बरसाना धाम' का अशेष-अनन्त, अद्भुत-अलौकिक माधुर्य है ।)

न याति तृप्तिं शतशोथ घुष्टं, पिबन् श्रुतिभ्यां मुहुरुन्नताभ्याम् ।
यन्नामबृन्दारकवृन्दवन्द्यं, सुधारसं वै प्रपिवन्ययाजः ॥२॥

जिस वृषभानुपुरी का नाम देव समूह द्वारा वन्दनीय है, जिस पुरी के नाम के सैकड़ों (अनन्त) बार उच्चारण को श्रीकृष्ण सावधानीपूर्वक अपने कानों से पुनः पुनः श्रवण करते हैं तथापि वे तृप्त नहीं होते हैं । निश्चित ही यह वह नगरी है जिसके द्वारा अज (ब्रह्माजी) ने (ब्रह्माचल के रूप में) सुधा रस का पान कर (अपने को कृतार्थ किया) ।

('बरसाना' का नाम मात्र ही अमृतरस की वृष्टि करने वाला है, यह भाव ध्वनित हो रहा है । इस श्लोक के चतुर्थ चरण में प्राचीन प्रति में पाठ भेद है; वहाँ पर "ययाजः" के स्थान पर "यथातः" पाठ है, तदनुसार अर्थ होगा कि – जैसे सुधारस के पान से तृप्ति नहीं होती, ठीक वैसे ही 'वृषभानुपुरी के नाम' श्रवण से श्रीकृष्ण तृप्त नहीं होते; यही इस रस की अनन्तता है, उसकी जय हो ।)

यत्रास्ति श्रीमद्वृषभानुमन्दिरं, प्रभासहस्रामलचन्द्रसुन्दरम् ।
यज्ज्योत्स्नया राजितनन्दमन्दिरे, चिक्रीड बाल्ये ननु नन्दनन्दनः ॥३॥

इस पुरी में श्रीसम्पन्न वृषभानुजी का मन्दिर है, जो अपनी कान्ति के द्वारा हजारों निर्मल (पूर्णिमा के) चन्द्रों के समान मनोहर है, जिस मन्दिर की दिव्य दीप्ति के द्वारा (नन्द-ग्रामस्थ) श्रीनन्द-मन्दिर भी अलङ्कृत हो रहा है अर्थात् वृषभानु-मन्दिर का प्रतिबिम्ब नन्दभवन में उद्भासित हो रहा है, जहाँ पर शैशव अवस्था में श्रीकृष्णचन्द्र क्रीडा-निरत हैं जो सर्वथा जयकार के योग्य है ।

वैदूर्येण विनिर्मिता सुललिता यत्रस्थली राजते,
यस्यां कीर्तिसुता प्रपश्यति मुखं तांबूलरागारुणम् ।
स्वंरूपं हरितं विलोक्य किमहो ! कृष्णोऽस्ति मद्देहगो,
लीनश्चेन्मयि वाह्यगः कथमयं चेत्थं वितर्कं गता ॥४॥

जिस नगरी में वैदूर्य-मणियों से निर्मित स्थली जो कि अतीव कमनीय सुशोभित हो रही है जिसमें कीर्तिनन्दिनी श्रीराधा जी ताम्बूल (पान) की रक्तिमा से अरुण (लाल) हुये अपने मुख को निहारती हैं (वैदूर्यमणि की आभा हरित युक्त नीलवर्णा है) अतएव श्रीराधिकाजी को अपना स्वरूप हरित-वर्ण का प्रतीत होता है और वह वितर्क करती हैं कि श्रीकृष्णचन्द्र तो बाहर हैं, वे मेरे देह में कैसे विलीन (संक्रान्त) हो रहे हैं ।

(वस्तुतः श्रीकृष्ण के चिन्मय श्रीविग्रह में भगवती राधिका एवं किशोरी जी के श्रीविग्रह में श्रीकृष्ण सदैव विद्यमान हैं तथा दोनों ही अभिन्न हैं ।

"एकं ज्योतिरभूद् द्वेधा राधा-माधव रूपकम् ॥"

अनन्त वैशिष्ट्य से युक्त पुरी सर्वोत्कर्षशालिनी है ।)

पादन्यासवशाद्गता मलिनतां सावस्थली राजते,
स्वेदाख्यं ननु सात्विकं प्रतिगता राधापदस्पर्शनात् ।
यद्वन्मुख्यसखी भवत्यतितरां तत्प्रेमपूर्णा सदा
सेवायां चतुरा प्रियापदयुगं वक्षस्थले बिभ्रती ॥५॥

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

श्रीहरिप्रिया किशोरीजी प्रातः बेला में वृषभानुपुरी की चिन्मय भूमि में भ्रमण कर रही हैं, उनके चरण-निक्षेप से वह स्थली परम कमनीयता को प्राप्त हो रही है (जहाँ-जहाँ उनके चरण पड़ते हैं, वहाँ-वहाँ कमल समझकर भ्रमर मानों उस भूमि को प्रणाम करते हैं । वह स्थली मलिन हो रही है अर्थात् भाव की विह्वलता में अश्रु रूप (मलिनता) सात्विक भाव धारण कर रही है ।) श्रीराधा चरण-स्पर्श से यह भूमि स्वेद-बिन्दु (जो प्रातःकाल ओस-कण के रूप में) धारण कर रही है जो कि सात्विक भाव स्वरूप हैं । जैसे सेवा में चतुर मुख्य ललिता आदि सखी श्रीराधा जी के प्रेम से परिपूर्ण होकर उनके चरणकमलों को अपने वक्षःस्थल पर धारण करती हैं, ठीक उसी प्रकार यह बरसाना धाम की दिव्य स्थली श्री-चरणों को अपने हृदय पर धारण कर उनके प्रेम से परिपूर्णता को सदैव प्राप्त हो रही है ।

(इस दिव्य भूमि को श्रीराधा जी की सहचरी के रूप में चित्रित किया गया है । 'प्रेमपूर्ण एवं अश्रुयुक्त होने से यह स्थली चेतन स्वरूप है' यह ध्वनित हो रहा है ।)

चलत्पदस्पर्शमवाप्य सास्थली सुनिर्वृताभूत्प्रथमं ततः परम् ।
अन्यत्र तत्पादमवेक्ष्य चेर्ष्यया किंचिन्मलिम्नश्छलतोऽश्रु बिभ्रती ॥६॥

वृषभानुपुरीकी दिव्य भूमि पर (प्रातःकाल) श्रीकिशोरी भ्रमण कर रही हैं, उनके चलते हुये चरणों के स्पर्श को प्राप्त कर वह स्थली पहले कृतकृत्य हो जाती है, तदनन्तर वही स्थली प्रिया जू के चरणों को अन्य स्थली पर देखकर ईर्ष्या के कारण कुछ मलिन-सी होकर और अपने साथ छल का अनुभव करती हुई (ओस की बूँद रूपी) अश्रुओं को धारण कर लेती है ।

(अर्थात् यहाँ का कण-कण प्रिया-वियोग को सहन नहीं कर सकता है, यही भाव ध्वनित होता है अतएव यह स्थली सर्वोत्कर्षशालिनी है ।)

यत्र गह्वरकं नाम वनं द्वन्द्वमनोहरम् ।
नित्यकेलिविलासेन निर्मितं राधया स्वयम् ॥७॥

इसी वृषभानु-नगरी में 'गह्वरवन' नामक सुन्दर वन है, जो कि युगल विग्रह श्रीराधा-कृष्ण की दिव्य जोड़ी से और अधिक मनोरम बन गया है, जिस वन को भगवती राधिका ने स्वयं अपनी केलिविलास की दिव्य सामग्री से प्रकट किया है । (विशेष – यह संसार सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय आदि द्वन्द्वों से सर्वथा कान्तिहीन हो जाता है किन्तु यह दिव्य गह्वरवन 'द्वन्द्व' अर्थात् 'युगलसरकार' से और अधिक श्रीसम्पन्न हो रहा है, यही इस पुरी का अद्भुत, अलौकिक, माधुर्य है; अतएव यह सदैव जयकार के योग्य है ।

"द्वन्द्व मनोहर" पद गह्वरवन का विशेषण है, जिसका द्वितीय निम्नांकित अर्थ भी सुसंगत होता है – संसार के द्वन्द्वों से आहत मन को यह वन शान्ति प्रदान करता है ।)

ललितालीलितानंदमूर्तिःश्रीवृषभानुजा ।
क्रीडति श्यामलेनेह ललितापरिलालिता ॥८॥

वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा स्वयं तो अति कमनीय हैं ही, साथ में अति दिव्य कमनीय आनन्द की निधि भी हैं तथा प्रिय सखी ललिताजी के द्वारा समग्र रूप से अलङ्कृत की गयी हैं, वह इसी पावन स्थली में प्रियतम श्रीघनश्याम के साथ क्रीडा कर रही हैं ।

(इस पद्य में भगवतीश्री श्रीजी को 'ललितानन्दमूर्ति' कहा गया है । यहाँ 'मूर्ति' पद सत् का वाचक है, 'ललित' पद चित् भाव का व्यञ्जक है एवं 'आनन्द' शब्द उनके निरतिशय आनन्द का द्योतक है अर्थात् वह सच्चिदानन्दस्वरूपा हैं,

उनकी यह पावन स्थली नितरां जयकार के योग्य है ।)

गुंजद्भृंग कुलाम्बुजातमुकुलं गायत्सुपुंस्कोकिलं,
नृत्यत्केकिकलं समीरविचलत् – पत्र प्रभाभासितम् ।
नानाचंद्रविनिंदिदीप्तिमदलं राजन्मणींद्रस्थलं,
वाद्यं निर्झरभेरिका कलकलं ध्यायामिकुंजोत्तमम् ॥९॥

(इस श्लोक में उत्तम कुञ्जों से विभूषित गह्वरवन का ध्यान किया गया है –) यहाँ के कमल-कोरकों पर भ्रमर-समूह गुञ्जार कर रहा है, पुंस्कोकिल समूह (पुल्लिङ्ग कोयल) यहाँ पर मधुर गान कर रहा है, मयूर मधुर नृत्य कर रहे हैं, पवन से हिलते हुये वृक्षों की पत्रावली की प्रभा (कान्ति) से यह गह्वरवन अतीव देदीप्यमान हो रहा है, अनेक चन्द्रमाओं को तिरस्कृत करने वाली कान्ति से सम्पन्न यहाँ के पुष्प-दल हैं, यहाँ के स्थल श्रेष्ठ रत्नों से अलङ्कृत हैं, पक्षियों का कलरव ही यहाँ वाद्ययंत्र का कार्य कर रहा है तथा झरने की मनोरम ध्वनि ही भेरी (नगाड़ा) का कार्य कर रही है; ऐसे कुञ्जों वाले उत्तम वन का मैं ध्यान करता हूँ ।

अनंगरंगोत्सवसार पूरितं मृदुद्रुतैः पल्लवकैः सुशोभितम् ।
हरन्मनः श्यामलगौरगात्रयो र्विशत्यहोमन्मनसीहगह्वरम् ॥१०॥

यहाँ बरसाना धाम में विद्यमान गह्वरवन, कामदेव के रसोत्सव के सार से परिपूर्ण है, (वृक्ष एवं लता-पताओं की टहनियों में) उत्पन्न हुए कोमल-किसलयों से अलङ्कृत है, आश्चर्य है यह वन अपनी कमनीयता से श्रीराधा-माधव के मन को भी हरण करने वाला है, वह गह्वर मेरे चित्त में अभिनिविष्ट हो रहा है ।

('युगलचरणरत ग्रन्थकार' की धाम-निष्ठा ध्वनित हो रही है ।

राधा-माधव के चित्त को हरण करने की सामर्थ्य धाम में है, यही इस धाम की अशेष-अद्भुत-माधुरी है ।)

वियोज्यते वियुक्तं वा न कदापि वियोक्ष्यते ।
क्षणार्द्धसत्कोटियुगं युगलं तत्र गह्वरे ॥ ११ ॥

प्रिया-प्रियतम (शब्द एवं अर्थ की भाँति नित्य सम्पृक्त 'मिले हुए' हैं) वे एक-दूसरे से न तो कदापि वियुक्त हुए हैं और न ही वर्तमान में उनका पार्थक्य सम्भव है तथा भविष्य में भी उनके वियोग की सम्भावना भी नहीं की जा सकती, उस गह्वरवन में युगल सरकार कोटि-कोटि युगों को आधे क्षण के समान व्यतीत करते हैं ।
(यहाँ युग-युगान्तरों से गह्वर की सत्ता एवं उसके साथ राधा-माधव का नित्य संयोग अभिव्यञ्जित हो रहा है, यही धाम की लोकोत्तरता है; अतएव इसका ध्येयत्व चरितार्थ होता है ।)

योगे वियुक्तवन्मानि ललितैकाश्रयं स्वयम् ।
करुणाशक्तिसम्पूर्णं गौरं नीलं च गह्वरे ॥ १२ ॥

प्रिया-प्रियतम का मिलन नित्य है, अतएव संयोग (संभोग) श्रृंगार में भी प्रेमातिशय के कारण वियोग (विप्रलम्भ) श्रृंगार का अनुभव करने वाले, ललित (कमनीय) मूर्ति श्रीराधाजी ही एकमात्र जिनका आश्रय हैं; ऐसे श्रीश्यामसुन्दर हैं तथा ललितविहारी श्रीकृष्ण ही जिनके एकमात्र आश्रय हैं, ऐसी श्रीवृषभानुनन्दिनी हैं; वे 'दोनों' दोनों के स्वयं एकमात्र आश्रय हैं, गह्वरवन में विद्यमान गौर एवं श्याम तेज 'करुणा-शक्ति' से ओत-प्रोत हैं ।

(यहाँ 'ललित' पद में श्लेष है । रस-मर्मज्ञ आचार्यों के अनुसार 'विप्रलम्भ श्रृंगार' के बिना संयोग-श्रृंगार परिपुष्ट नहीं होता है, यही प्रेम की पराकाष्ठा है । यहाँ श्रीकिशोरीजी के आलम्बन विभाव श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्ण की आलम्बन विभाव स्वरूपा भगवती राधिका हैं ।

"न विना विप्रलम्भं हि सम्भोगः पुष्टिमश्नुते ।"

ईश्वर का वास हृदय में है "हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति" । अतः 'गह्वर' इस ब्रजभूमि का हृदय ही है ।)

तमालसंवेष्टितहेमयूथिका मध्यस्थिता कापि मिलन्नवच्छविः ।
संलक्ष्यते युग्महृदिस्थितेव सा लालित्यरूपाललिता परासखी ॥१३॥

लिपट रही लाल जू के ललित अङ्ग सोहनी ।
कनक बेलि तरु तमाल छवि विमोहिनी ॥ (श्रीमहावाणी)

श्रीश्यामसुन्दर तमाल वृक्ष के वर्ण के समान वर्ण वाले हैं तथा श्रीप्रियाजी कनक-कान्ति लता हैं । जैसे - श्याम वर्ण तमाल-पादप पर स्वर्ण-लता लिपट जाती है, ठीक वैसी ही स्थिति वृषभानुनन्दिनी एवं नन्दनन्दन की है अर्थात् वे परस्पर आलिङ्गनबद्ध हैं, उनके मिलन से मध्य में अनिर्वचनीय छवि (कान्ति) भासित हो रही है और ऐसा प्रतीत होता है कि युगल सरकार के हृदय में अति कमनीय रूप माधुरी सम्पन्न ललिता सखी 'जो कि सखियों में परा (उत्कृततरा) हैं' विद्यमान हैं ।

(यहाँ श्रीराधा-माधव के हृदय की एकता द्योतित हो रही है ।)

रूपं यल्ललितं द्वयोश्चमिलनं तन्नित्यलालित्यकृत्,
प्रीतिर्वैं ललितापरस्परगता वृन्दाटवी चापि हि ।
लालित्येन विनिर्मिता सुललिता शय्यापिं कुञ्जातरे,
श्रीमूर्तिर्ललिता च भूषणपटस्रग्गन्धलालित्यभृत् ॥१४॥

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

प्रिया-प्रियतम का रूप लोकोत्तर कमनीय है और दोनों का परस्पर मिलन भी नित्य नवीन लालित्य (कमनीयता) की सृष्टि करने वाला है, परस्पर एक-दूसरे के प्रति अनपायिनी प्रीति भी परम मनोरम है, निश्चय ही उनके नित्य संयोग से वृन्दावन भी अतीव कमनीय हो गया है । कुञ्ज के मध्य भाग में अति लालित्य से बनायी गयी शय्या भी अत्यन्त ललित है, परम सुषमा सम्पन्न श्रीमूर्ति (युगल विग्रह) भी परम रमणीय है तथा उनके आभूषण-वस्त्र-माला-चन्दन आदि भी परम कमनीयता को धारण किये हुए हैं ।

पीत्वा मुखाम्बुज श्री मकरंदामृतमनन्यभावरतिः ।
वाञ्छति निपत्यपदयोः राधायाः श्यामलस्तर्षाम् ॥ १५॥

(आर्यावृत्त छन्द)

श्रीसर्वेश्वरी किशोरी जू के प्रति अनन्य भाव सम्पृक्त रति (प्रेम) वाले श्रीकृष्ण, स्वामिनी के मुखकमल से निःसृत कमनीय मकरन्द रूप अमृत का पान करके उनके श्रीचरणों में गिरकर अपनी पिपासा को और अधिक करने की इच्छा करते हैं ।

(श्लोक के द्वितीय चरण में श्रीश्यामा जू के प्रति घनश्याम श्रीकृष्ण के भाव एवं रति को प्रदर्शित किया गया है –

रति र्देवादि विषया व्यभिचारी तथाञ्जितः ।

भावः प्रोक्तः ..... ॥ (काव्य प्रकाश)

नायक के 'नायिका विषयक प्रेम' को रति कहते हैं किन्तु वही रति यदि देव-गुरु-मुनि आदि परक होती है तो 'भाव' संज्ञक हो जाती है और 'रति रूप' में भी परिलक्षित हो रही है; अतएव उनके चरणों में प्रणिपात का औचित्य प्रतीत हो रहा है ।)

शय्यां निर्माय दलकैः संस्थाप्य निजवल्लभाम् ।
तत्रपादाम्बुजे दृग्भ्यां लालयन् रमते प्रियः ॥ १६॥

(कुञ्जमन्दिर के अन्दर श्रीश्यामसुन्दर) कोमल पुष्पदलों से शय्या का निर्माण करते हैं और उस पर अपनी प्राणवल्लभा श्रीकिशोरीजी को विराजमान करके गह्वर-कुञ्जभवन में प्रियाजी के चरणकमल में नेत्रों द्वारा लाड़ लड़ाते हुए प्रियतम रमण कर रहे हैं ।

पदयोः प्रविलाप्य यावकं दयितायाः करकञ्जभङ्गिभिः ।
अतिभावगभीरसागरे विनिमग्नोत्रलुठत्यसौ प्रियः ॥१७॥

अपने कर-कमल की भङ्गिमा कलापूर्ण (चातुरी) से अपनी प्रेयसी के चरणों में महावर लगाकर अत्यन्त गम्भीर भाव रूपी सागर में निमग्न प्रियतम श्रीकृष्ण यहाँ (गह्वरवन में) प्रियाचरणों में लोट रहे हैं ।

अविनिश्चितरूपमाधुरी परपारः प्रतिलभ्य तत्पदम् ।
सुखनावमिवात्रसागरे दयिता रूपमये प्रखेलति ॥१८॥

जिनकी रूप माधुरी की इयत्ता नहीं है, ऐसी अनुपम असीम रूप माधुरी से सम्पन्न परात्पर ब्रह्म श्रीकृष्ण, प्रियाजू के चरण रूपी आनन्दमयी नौका को पाकर प्रियतमा किशोरीजी के रूपमय सागर में विहार कर रहे हैं ।

('परपारः' पद श्रीकृष्ण का विशेषण है, वह परात्पर ब्रह्म हैं, क्षर एवं अक्षर दोनों से अतीत होने से - "यस्मात् क्षर मतीतोहं ..... ॥" 'पर' शब्द से स्वार्थ में अण् प्रत्यय होकर 'पार' शब्द निष्पन्न होता है ।

'अविनिश्चित रूप माधुरी परपारः' में मध्यम पद लोपी समास है ।

श्रीकृष्ण पर से भी पर हैं । उनसे परे कुछ भी नहीं है –

"मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥" (श्रीभगवद्गीता ७/७)

जिनमें अनन्त ब्रह्माण्ड ओतप्रोत हैं, वही श्रीकृष्ण सकलैश्वर्यशालिनी परमाह्लादिनी शक्ति श्रीराधा में ओतप्रोत हैं; यही भावाभिव्यक्ति हो रही है ।)

निधेहि पदपंकजयुगं मम प्रिये हृदीरयंश्चेत्थमतीवकातरः ।
लुठत्यसौ पार्श्वगतोऽपि राधया लावण्यवश्यः कृपयापि पोषितः ॥ १९॥

श्रीनन्दनन्दन सदैव वृषभानुनन्दिनी के दक्षिण पार्श्व (बगल) में विराजमान रहते हैं, वे श्रीजी की अद्भुत रूप माधुरी के वशीभूत हैं एवं उन्हीं की कृपा से पोषित हैं, वे कातर वाणी में अति विह्वल (भाव विभोर) होकर प्रिया जू से कहते हैं – "हे प्रिये ! अपने युगल चरणकमलों को मेरे वक्षःस्थल पर रख दो, इस प्रकार अपनी भावाभिव्यक्ति करते हुए (प्रियाचरणों में) प्रणिपात करते हैं ।"

(यहाँ प्रियतम का प्रिया जू के प्रति पूर्ण समर्पण एवं उनके प्रीति आदरातिशय ध्वनित हो रहा है ।)

मृदुपद्मपदे मनोहरः करनीलोत्पललालनैः स्पृशन् ।
जडिमानमुपैति भावतो नयनाम्भोजजलेन सेचयन् ॥ २०॥

श्रीकृष्णचन्द्र की दिव्य कान्ति मन को हरण करने वाली है, वह अपने नीलकमल सदृश हाथों से प्रिया जू के चरणों का स्पर्श करते हुए सहला रहे हैं । सर्वेश्वरी के प्रति वे दिव्य भाव से भावित हैं, नेत्रकमलों से निर्गत अश्रु-बिन्दुओं से स्वामिनी के पादारविन्द को अभिसिञ्चित करते हुये भावातिरेक के कारण जडवत् अवस्था को प्राप्त हो रहे हैं ।

करपंकजसंपुटे स्थितं चरणं नूपुरभूषितं बभौ ।
सुदृशः किमु वंदिनिःस्वनै र्गदितं राजकुलं वरासने ॥ २१॥

नूपुर से अलङ्कृत श्रीकिशोरीजी का चरण श्रीकृष्ण के कर-कमल रूपी सम्पुट में सुशोभित हो रहा है, माधव का हस्तकमल ही प्रियाजू का श्रेष्ठ आसन है । क्या सुन्दर नेत्रों वाली स्वामिनीजू का राजकुल वन्दीजनों के द्वारा गाया गया है ? अर्थात् क्या वह इतने उच्च कुल वाली हैं ? जो कि इस आसन की अधिकारिणी हैं ।

ओष्ठाभ्यां परिचुम्बति मधुरं पदपंकजं प्रिय रसिकः ।
निजहृदयस्थितरागं यावकपाट्यालापयन्निव ॥२२॥

प्रिय रसिक श्रीश्यामसुन्दर अपने दोनों ओष्ठों से श्रीकिशोरीजी के चरणकमल को चूमते हैं । प्रियाजी के श्रीचरण महावर से अनुरञ्जित हैं, ऐसा प्रतीत होता है मानो श्रीकृष्ण के हृदय में विद्यमान प्रिया के प्रति अनुराग ही उनके चरणों में महावर के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है ।

(शास्त्रों में अनुराग का रंग लाल बताया गया है । श्रीश्यामाजू के चरण सर्वदा श्रीकृष्ण के अन्तःस्थल में विराजमान रहते हैं, यही भाव ध्वनित हो रहा है ।)

अतिहर्षितदृक्तनुरुहो दयितापांगजसत्कृपाभरैः ।
अभिनन्दति भाग्यसंपदं स निजां नेत्रमुखैः पदेस्पृशन् ॥२३॥

प्राणवल्लभा भगवती राधिका अपनी सहज सुन्दर सत् स्वरूपा परिपूर्ण कृपादृष्टि के द्वारा निहार रही हैं, जिससे वह रसिक शिरोमणि श्यामसुन्दर अत्यन्त हर्षित हो जाते हैं, उनके नेत्र आनन्द विभोर हो उठते हैं एवं शरीर रोमाञ्चित हो जाता है, वह अपने नेत्र एवं मुख से प्रियाचरणों का स्पर्श करते हुये अपनी भाग्य-सम्पदा की सराहना करते हैं ।

(अर्थात् श्यामाजू की अहैतुकी अनुकम्पा से कृतकृत्य हो गया, ऐसी अनुभूति श्रीकृष्ण को हो रही है ।

विशेष :

एक प्राचीन प्रति में यह श्लोक कुछ भिन्न रूप से पढ़ा गया है ।

यथा –

अति हर्षित दृक्तनुरुहो –

दयितायी गज सत् कृपाभरैः ।

अभिनन्दति भाग्य सम्पदम्

स निजा नेत्र मुखैः पदे स्पृशन् ॥

यह श्लोक अर्थ की दृष्टि से सुसंगत प्रतीत नहीं हो रहा है।)

अप्रतर्क्या किशोरस्य, प्रीतिः श्यामापदांबुजे ।
भजने भजते वृद्धिं, कर्षत्यपिविहारतः ॥२४॥

श्रीकृष्ण नित्य नवीन किशोर अवस्था में हैं, उनकी श्रीश्यामा जू के चरणकमल में तर्कातीत (कल्पना से परे) प्रीति है । वह 'प्रीति' भजन में (श्रीकृष्ण द्वारा किये गये श्रीराधाजू के भजन से) और अधिक वृद्धि को प्राप्त होती है तथा श्रीप्रियाजू के विलासपूर्वक किये गये विहार से श्रीमाधव को आकृष्ट करती है ।

(अर्थात् प्रियानुराग से ओतप्रोत श्रीकृष्ण की भक्ति 'आराध्या श्रीकिशोरीजी' के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ती है ।)

प्रवदति राधाराधेत्यति कातर्यभरेणपूरितः सन् ।
विस्मृतसकलशरीरस्तन्नेत्रकटाक्षपातेन ॥२५॥

'श्रीमाधव' सर्वेश्वरी किशोरीजी के प्रति कातरभाव-समूह से भरे हुए हैं, (अर्थात् श्रीकिशोरी-कृपा के बिना मेरा कुछ भी अस्तित्व नहीं है, इस दीन भाव से नित्य निरन्तर) श्रीराधा-राधा (मन्त्र का अहिर्निश) उच्चारण करते रहते हैं और जब श्रीराधाजी अपनी 'कृपामयी-दृष्टि' से उनको निहारती हैं तो वे (अपने को कृतार्थ मानते हुये उपकृत होकर) अपने कोमल कान्त-कलेवर की सुध भूल जाते हैं ।

(यही प्रणय-रस की पराकाष्ठा है ।)

जहार राधा शिरसः शिखण्डकं, कृत प्रणामस्य धवस्य लीलया ।
खेलंत्यहो प्राप्तपदांगुलीजयाऽ - हसन् तदुष्णीषलवापकर्षणात् ॥२६॥

श्रीश्यामाजू के चरणों में श्रीकृष्ण प्रणाम करते हैं, उसी समय श्रीराधारानी उनके शिरोमुकुट को लीलापूर्वक अपहृत कर लेती हैं, 'मुकुट' मयूर-पिच्छ से विभूषित है । वे पाद-कन्दुक के समान उस मुकुट से क्रीडा करने लगती हैं और चरणकमल की अङ्गुली से ही वे श्रीकृष्णचन्द्र को जीत लेती हैं; (इस लीला का अवलोकन कर उपस्थित गोपियाँ) हास्यमग्न हो जाती हैं ।

(यहाँ श्रीराधाभाव से भावित ग्रन्थकार ने श्रीजी के निरतिशय वैशिष्ट्य का प्रतिपादन किया है ।)

राधायाःसुविनिःसृता रसमयी नीलांबुजश्रीयुता,
कृष्णात्यद्भुतहस्तसन्मुख सुखानानाविभावच्छटा ।
प्रेमावर्तवती न पारकलना सिंचेति नाम्नासखी,
मत्स्यासेवितमध्यमा मम कदा चित्तं नदीप्लावयेत् ॥२७॥

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

(यहाँ श्लोक के प्रारम्भ में –

"राधायाः सुविनिःसृता" पाठ सुसंगत प्रतीत हो रहा है तदनुसार –)

श्रीराधा जू की दिव्य तेजोमय कान्ति से निकली हुयी रसमयी नदी प्रवाहित हो रही है, जो नदी श्रीकृष्ण रूपी नीलकमल की दिव्य कान्ति से श्रीसम्पन्न हो रही है । श्रीकृष्ण के परम कमनीय हाथ-मुख आदि विभाव की छटा से नदी समलङ्कृत है । इस नदी में प्रेम ही भँवर के रूप में विद्यमान है । नदी का मध्य भाग मत्स्यों से आसेवित है । श्रीराधा जी के मुखकमल के मध्य में विद्यमान नेत्र ही मानों इस नदी के मत्स्य हैं । (अर्थात् भगवती राधिका जी मीनाक्षी हैं ।) परम सुषमामयी इस नदी का पार पाना अति दुष्कर है । इस नदी की दिव्यता से मोहित कोई 'सखी' नाम-निर्देशपूर्वक दूसरी सखी से कह रही है कि इस नदी में स्नानकर अपने को कृतार्थ करो । यह नदी मेरी चित्त भूमि को कब आप्लावित करेगी ?

अर्थात् इस नदी में अवगाहन कर मैं कब अपने को कृतकृत्य करूँगी ?

(एक प्राचीन प्रति में इस श्लोक को किञ्चित् प्रकारान्तर से पढ़ा गया है – यथा –

"राधा भाव विनिःसृता ....."

तदनुसार अर्थ होगा - श्रीराधाजी की भाव-भङ्गिमा से निकली हुयी नदी ..... ।)

कृष्णं निधाय पदयोः किशोर्य्याश्चाग्रतः स्थिता ।
तस्मै प्रसादं याचंती हसंती मेलये कदा ॥२८॥

(अनुष्टुप् छन्द)

यहाँ सखी कामना कर रही है कि मैं श्रीकिशोरीजी के समक्ष स्थित होकर श्रीकृष्ण को उनके चरणों में स्थापित करके, श्रीराधाजी से श्रीकृष्ण के प्रति प्रसन्न होने की याचना करती हुई (अर्थात् हे श्रीराधे ! आप कृष्ण पर प्रसन्न हों) तथा हँसती हुई उन दोनों का कब मिलन कराऊँगी ?

द्वयं गृहीत्वा हस्ताभ्यामावध्यभुज बन्धतः ।
स्वस्याः संस्थाप्य हृदये सुखिता स्यामहं कदा॥२९॥

(अनुष्टुप् छन्द)

("द्वौ अवयवौ यस्य समुदायस्य तत् द्वयम् ।" जिस समुदाय के दो अवयव होते हैं, उसे 'द्वयम्' कहा जाता है अर्थात् राधा-माधव दोनों एक ही हैं समुदित रूप से, उनमें लीला हेतुक कल्पित पार्थक्य है । यहाँ सखीभावापन्न सहृदय ग्रन्थकार का मनोरथ है कि)

श्रीराधा-माधव (युगल सरकार) को अपने हाथों से पकड़कर अपनी भुजाओं के बन्धन में बाँधकर और उन्हें अपने वक्षःस्थल पर संस्थापित करके मैं कब आनन्द- मग्न होऊँगी ?

(भुज-बन्धन में बाँधने की उत्कट अभिलाषा से यह ध्वनित हो रहा है कि प्रिया-प्रियतम को क्षणमात्र के लिये भी अपने से पृथक् नहीं होने देना चाहती है तथा परमानन्द के एकमात्र हेतु राधा-माधव ही हैं ।)

स्वांचलेनैव चावृत्य निधायनिजवक्षसि ।
किंचिदुत्सार्य वसनं पश्यामि युगलं कदा ॥३०॥

(अनुष्टुप् छन्द)

(सखीभाव से परिभावित सहृदय ग्रन्थकार अपनी मनःकामना की अभिव्यक्ति करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं ।)

युगल स्वरूप को अपने अञ्चल से ढककर और अपने हृदय पर विराजमान करके (किञ्चित् कालानन्तर) वस्त्र को थोड़ा-सा हटाकर (प्रिया-प्रियतम को) कब देखूँगी ?

शय्या भूत्वा स्थिता चाहं तौ खेलाते ममोपरि ।
सुचुम्बनादिनिरतौ दृष्ट्वा स्यां सुरिवनी कदा ॥३१॥

(अनुष्टुप् छन्द)

(प्राचीन प्रति में तृतीय एवं चतुर्थ चरण का निम्नांकित पाठ शुद्ध है; यथा –
"सुचुम्बनादि निरतौ दृष्ट्वा स्यां सुखिनी कदा ॥"
मूल प्रति में 'शय्यां' पद की जगह 'शय्या' पाठ होना चाहिये ।)

मैं श्रीराधा-माधव की अविचल शय्या बन जाऊँ और वे दोनों मेरे ऊपर अपनी रसमयी लीला का सम्पादन करें; उन्हें परस्पर चुम्बन, परस्पर अवलोकन-आलिङ्गन आदि करते हुये देखकर मैं कब आनन्दमग्न होऊँगी ?

(उपर्युक्त चार श्लोकों में 'कदा' शब्द प्रयोग सिद्ध कर रहा है कि राधा-माधव का वियोग क्षणभर के लिये भी असह्य है ।)

मम हारं सुसंगृह्य संस्थितौ तौ दशाभरात् ।
वार्तालापरतौ लग्नौ मत्कुचाग्रोपबर्हणौ ॥३२॥

(अनुष्टुप् छन्द)

(प्राचीन प्रति में किञ्चित् भेद है – यथा –
"ममाहारं सुसंगृह्य संस्थितौ तौ दशाभरात् ।" 'मम हारं' पाठ उचित है ।)

सखी की गोद में उनके हार को पकड़कर श्यामा-श्याम विराजमान हैं, वे प्रेम-दशा में निमग्न हैं, दोनों परस्पर वार्तालाप में निरत हैं तथा आपस में एक-दूसरे

से संलग्न (सटे हुए) हैं । सखी के युगल कुचों का अग्रभाग (जिसे 'कृष्ण-चूचुक' कहते हैं) ही प्रिया-प्रियतम का तकिया है ।

(इस प्रकार दिव्य प्रेमरस में सराबोर 'युगल छवि' सखी-हृदय को परम आह्लादित कर रही है । प्राचीन प्रति में "दृशाभशत्" पाठ है ।)

बोधयंतौ हि मां वश्यात् सेवायां प्राण वल्लभौ ।
दृष्ट्वा स्यां सुखिनी कर्हि ललिते हे कृपां कुरु ॥३३॥

(यहाँ सखी अपने मनोरथ को प्रकट करती हुई कहती है –)

मुझे वशीभूत आज्ञाकारिणी समझकर अपनी सेवा में लगाने के लिये सम्बोधित करने वाले प्राणप्रिय श्रीराधा-माधव को देख मैं कब आह्लादित हो सकूँगी ? हे ललिते ! आप मेरे ऊपर ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे प्रिया-प्रियतम की सेवा का अवसर मिल जाए ।

(यह श्लोक प्राचीन प्रति में उपलब्ध पाठ से सर्वथा मिलता है, कोई भेद नहीं है । छन्द की दृष्टि से अनुवादक ने 'पद-योजना' की है ।)

सखी ममेयं वरदास्यवर्तिनी सखी ममेयं सुखपोषणे रता ।
इति ब्रुवन्तौ मम दृष्टिपातनं विलोक्यराधापदसंश्रितं भृशम् ॥३४॥

(वंशस्थ छन्द)

(यहाँ सखी का मनोरथ है कि क्या कभी श्रीश्यामा-श्याम मेरे विषय में ऐसा कहेंगे कि) यह मेरी सखी श्रेष्ठ दास्यभाव में (दासी-कर्म में) रहने वाली है एवं यह मेरी सखी हमारे सुखपूर्वक पोषण में (सेवा में) निरत रहती है; इस प्रकार कहते हुये तथा मुझे श्रीराधाजी के चरणकमल के पूर्ण आश्रित समझकर मेरे ऊपर दृष्टिपात करेंगे ?

(इस श्लोक के तृतीय पाद के आदि में "इत्थं वदंतौ" की जगह "इति ब्रुवन्तौ" पाठ से ही छन्द सुसंगत होता है ।)

जयत्रपाफुल्लविनम्रवक्त्रका-वानंदखेदोद्वहनोन्मुखौ स्थितौ ।
तौ शारदीसूतिसमीपतः कदा संकोच्य कृष्णं प्रविलोकयेऽहम् ॥३५॥

प्रिया-प्रियतम आनन्दमयी क्रीडा के सम्पादन में निरत हैं, क्रीडा में वे परस्पर जय-पराजय को प्राप्त हो रहे हैं, जय से मुखारविन्द प्रफुल्लित हो जाता है एवं पराजय से लज्जा के साथ मुख विनम्र (झुक) हो जाता है ।

अधिरुह्य धवांसमुच्चवृक्षात् कुसुमं संचिनुते कृशोदरी सा ।
ननु नीराजित जीवनं भ्रमत् स सद्भमरेणाथ ददाति नंदजाय ॥३६॥

प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र के कन्धों पर चढ़कर श्रीकिशोरीजी ऊँचे वृक्ष से पुष्प-चयन कर रही हैं, पुष्पों पर भौंरे मँडरा रहे हैं, भ्रमर युक्त पुष्पों के साथ ही कृष्ण के ऊपर न्यौछावर अपने जीवन को भी नन्दनन्दन को समर्पित कर रही हैं ।

संस्पृश्य तत्पादतलं किशोरकः किशोरिकायाः करकंज-भङ्गिभिः ।
लब्धं मरंदं प्रविलाप्य नेत्रयोः स्वयोर्न तृप्तः पुनरेव वाञ्छति ॥३७॥

नवल किशोर अपने हस्तकमल की भङ्गिमाओं द्वारा श्रीकिशोरीजी के चरणकमल का स्पर्श करके, चरणकमल से मकरन्द-रज को अपने नेत्रों से लगा रहे हैं पुनरपि वे तृप्त नहीं हो रहे हैं, पुनः-पुनः श्रीकिशोरीजी के पद-रज की कामना कर रहे हैं ।

(श्रीसर्वेश्वरी राधिकाजी के प्रति श्रीकृष्णचन्द्र के पूर्ण समर्पण-भाव की अभिव्यक्ति हो रही है ।)

निपीय राधामुखनिःसृतासवं चाश्रूणि मुंचन्न वदन्न किंचन ।
सगद्गदं चाथवलादुवाचतां निमज्जितोऽहं पदयोस्तव प्रिये ॥३८॥

भगवती राधिका के मुख से निकले हुये आसव-रस का पान करके श्रीकृष्ण प्रेमाश्रुओं को बहा रहे हैं तथा प्रेमाधिक्य के कारण कुछ बोल नहीं पा रहे हैं (क्योंकि उस रस की दिव्यता-भव्यता का वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता) वे रुँधे हुये

कण्ठ से गद्गद् वाणी में अति प्रयत्नपूर्वक कह रहे हैं – हे प्रिये राधिके ! मैं तो आपके चरणों (के सौन्दर्य-सौकुमार्य) में निमग्न हो गया हूँ अर्थात् डूब गया हूँ ।

(जैसे – 'आसव' व्यक्ति को 'मद-मस्त' बना देता है, वैसे ही श्रीकृष्ण श्रीराधामुख-निर्गत 'आसव-रस' से प्रमत्त हो रहे हैं ।)

ताम्बूलनिर्यासकपोलशोभितौ विमर्दितस्रग्वरधारिणौ स्वयम् ।
पर्य्यंकवर्यांकमसौपरस्पर मंजन् मषीश्यामदृशौक्षताधरौ ॥३९॥

प्रिया-प्रियतम दोनों पर्यङ्क (पलंग) पर विराजमान हैं, उनके मनोरम कपोल, पान के राग से और अधिक कमनीयता को धारण कर रहे हैं, रति क्रीडा में उनकी माला कुछ विमर्दित (मुरझाई हुई-सी) हो गई हैं, ऐसी माला को दोनों ने धारण कर रखा है, दोनों के नेत्रकमल अञ्जन से श्याम-वर्ण के प्रतीत हो रहे हैं तथा अधरपान-लीला में युगल छवि के अधर (नीचे का ओष्ठ) किञ्चित् क्षत (कटे हुए से) हो गए हैं ।

(इस प्रकार श्रीराधा-माधव लोकोत्तर सुषमा को धारण किये हुए हैं ।)

व्यत्यस्तवस्त्राभरणौ प्रजागरादुन्मत्तनेत्रौ निमिलत्सुपक्ष्मकौ ।
श्रीकुंकुमालिप्तहृदौरतांतरे विजृम्भमाणौ विलसद्विजद्युती ॥४०॥

कुञ्ज-भवन में सम्पादित रति-क्रीडा से 'प्रिया-प्रियतम' के वस्त्र एवं आभूषण अस्त-व्यस्त हो गए हैं, रात्रि-बेला में जागरण के कारण दोनों के नेत्र उन्मत्त (अलसाये हुए) हैं तथा बार-बार उनकी सुन्दर पलकें झपक रही हैं (अर्थात् निद्रा की पूर्वावस्था में वे विद्यमान हैं ।)

मनोरम कुङ्कुम से उन प्रिया-प्रियतम के वक्षःस्थल समलङ्कृत हैं तथा रतांतर में जब दोनों जम्भाई लेते हैं तो उनकी दन्त-पंक्ति परम सुशोभित हो रही है ।

(इस प्रकार राधा-माधव सुरत-विहार में निरत हैं ।)

प्रबोधितावंगुलचालनादिभिः स्वप्राणसख्यंगविमोहनोन्मुखौ ।
कव्चिद्धसन्तौ क्व च गायतः कलं, परस्पराश्लेषकरौ क्वचित्पुनः ॥४१॥

अङ्गुली-सञ्चालन रूप हस्त-संकेत के द्वारा प्रिया-प्रियतम को प्रबुद्ध (सावधान) किया गया है, अपनी प्राणस्वरूपा प्रिय सखी के अङ्गों को राधा-माधव दिव्य छवि से विमोहित कर रहे हैं, वे कभी तो हँसते हैं और कभी मधुर ध्वनि में गाते हैं एवं पुनः कभी परस्पर आलिङ्गनबद्ध हो जाते हैं ।

ऐसी युगल जोड़ी के मैं कब दर्शन कर सकूँगी ?

कव्चित्सुधाधारमुखावलोकना-वेकोत्तरीयं परिवेष्ट्य सुस्थितौ ।
सुभोजितौ दत्तसुवीटिकौ कदा तावालिलालित्यवलाद्विलोकये ॥४२॥

(प्रिया-प्रियतम की रसमयी लीला का वर्णन है –)

राधा एवं माधव दोनों के मुख अमृत-रस के एकमात्र आधार हैं, वे परस्पर एक-दूसरे के मुख को अपलक निहार रहे हैं और पुनः कदाचित् एक ही उत्तरीय (दुपट्टे) को लपेट कर दोनों सुशोभित होते हैं; ऐसे श्यामा-श्याम जब सुन्दर प्रसाद पा चुके हों, ऐसी अवस्था में सखी के माधुर्य-बल से उन दोनों को मैं कब देख सकूँगी ?

(भाव यह है कि सखियों के द्वारा युगल सरकार को सुन्दर भोजन कराये जाने एवं ताम्बूल अर्पण किये जाने पर सखी की अनुपम भक्ति-लालित्य के बल से ही उनका दर्शन सम्भव हो सकेगा अर्थात् उनका दर्शन कृपा-साध्य है ।)

निधाय वक्षसि शिरः प्रियस्य करभंगिभिः ।
संक्रीडमाना हरिणा सा विलोक्या कदा मया ॥४३॥

श्रीजी अपने वक्षःस्थल पर प्रियतम गोविन्द के शिर को रखकर अपनी कर भङ्गिमाओं के द्वारा श्रीहरि के साथ क्रीडा करती हुई मेरे द्वारा कब देखी जा सकेंगी ?

('प्रिया-प्रियतम के संयोग-श्रृंगार की झाँकी की अभिलाषा' सखी-हृदय में उत्कट रूप से विद्यमान है ।)

प्रियहारं सुहारेण सुसंयोज्य विचकर्षती ।
पदयोः पतितं प्रेष्ठं दृष्ट्वा हसति राधिका ॥४४॥

श्रीकिशोरीजी अपने प्रियतम श्यामसुन्दर के हार को अपने सुन्दर हार से बाँधकर खींचती हैं, प्रियतम (अचानक) श्रीराधाजी के चरणों में गिर पड़ते हैं, उन्हें देखकर वृषभानुनन्दिनी हँसने लगती हैं ।

अतिनम्रसुमुद्रया स्थितं रसिकं प्रेमपरिप्लुतेक्षणम् ।
जगृहे भुजवल्लिलीलया हृदि संस्थाप्य रसाप्लुतं व्यधात् ॥४५॥

रसिक शिरोमणि श्यामसुन्दर अति विनीत (विनय सम्पन्न, विनम्र) मुद्रा में विद्यमान हैं, उनके नेत्र प्रेम-रस से सराबोर हैं ।

श्रीकिशोरीजी अपनी दिव्य भुजलता द्वारा सम्पादित लीला-विलास से उन्हें (श्रीकृष्ण को) अपने हृदय पर विराजमान कर लेती हैं और माधव प्रेमरस में निमग्न हो जाते हैं ।

आपाययित्वाधरसंश्रितं मधु स्ववक्त्रनिःसारितवीटिकार्पणात् ।
स्वमालिकान्तश्च विधाय माधवं ररास राधा रसकेलिलंपटा ॥४६॥

श्रीलाड़िलीजी बीड़ी (ताम्बूल) चर्वण कर रही हैं, उस बीड़ी को अपने मुख से निकालकर लालजी को अर्पित कर रही हैं और लालजी उन किशोरीजी के श्रीमुख से चर्वित पान को अपने मुखारविन्द में ले रहे हैं, इसी व्याज (बहाने) से वे प्रियतम को अधराश्रित मधु का पान करा रहीं हैं ।

('अधरामृत का पान' संयोग-श्रृंगार का सार माना गया है; यथा –

"कामिनामधरास्वादो सुरतादतिरिच्यते ।"

भगवती राधिका श्रीमाधव को अपने माला के अन्तर्गत कर लेती हैं तथा रस-क्रीडा की लोलुप (निरतिशय माधुर्य की अधिष्ठात्री अधिदैवत) श्रीकिशोरीजी अपने प्राणवल्लभ के साथ रमण कर रही हैं ।

"रेमे किशोरी व्रजसुन्दरेण श्रृंगार-सारस्य किलैकमूर्तिः ॥")

निजांगसंगोत्थरतामृतांबुधौ मज्जंतमुत्तुंगकुचाख्यतुंबिके ।
निधाय या भीरुमपात्स्वसीत्कृतै - रानंदयंती बहुधा प्रियं श्रितम् ॥४७॥

(प्रिया-प्रियतम की अन्तरङ्ग लीला का चित्रण है ।)

रससारस्वरूपा श्रीस्वामिनी रस-लोलुप रसिकविहारी के साथ अङ्ग-संग कर रही हैं, अङ्ग-संग से समुद्भूत रतामृत के अथाह सागर में रमारमण डूब रहे हैं, श्रीराधा अपने पीन (मोटे) स्तन रूपी तुम्बिका (तूमड़ी) का आलम्बन देकर भीरु प्रियतम को उबार रही हैं और रस-निष्पत्ति के सूचक अपने सीत्कारों के द्वारा स्वाश्रित श्यामसुन्दर को अनेक प्रकार से आनन्दित कर रही हैं ।

प्रस्वेदकणिकायुक्तं मुखं तस्यास्तु लक्ष्यते ।
अन्तस्थ इव कारुण्य रसः कश्चित् स्रवेद् बहिः ॥४८॥

नित्य किशोरी रमणरत श्रीराधाजी का मुख पसीने की बूंदों से युक्त हो गया है, ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो उनके अन्तर्हृदय में विद्यमान विचित्र करुण-रस स्वेद-कणों के बहाने से बाहर प्रकट हो रहा है ।

पिवत्यतृप्तो विवशःप्रियास्यजं स्वास्येन नेत्रांबुजसंस्थितं मधु ।
स्वनेत्रयुग्मेन हृदा हृदिस्थितं सुवाहुयुग्मेन च बाहुजं रसम् ॥४९॥

श्रीश्यामसुन्दर प्रियानुराग में अनुरञ्जित होकर विवश हो गये हैं, वे प्रियतमा के मुख से निःसृत रस का पान अपने मुख से करते हुए अघा नहीं रहे हैं अर्थात् रस-पिपासा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है तथा प्रेयसी के नेत्रकमलों में विद्यमान मधुरस का पान अपने युगल नेत्रों से कर रहे हैं, हृदय में स्थित रस का पान अपने हृदय से एवं प्रियाजू के हाथों से निर्गत रस का आस्वादन श्यामसुन्दर अपने दोनों हाथों से कर रहे हैं ।

(प्रिया-प्रियतम के सभी अङ्ग 'रस स्वरूप' ही हैं, उनका प्रत्येक अङ्ग प्रति अङ्ग से संश्लिष्ट है । "रसो वै सः")

विकीर्णवर कुंतलां चपलचारुनेत्रां चलां
नटद्भ्रुकुटिशोभितां त्रुटितहारभूषावतीम् ।
शुक रुचिर नासिका नहिनहीतिवाक्कातुरीम्
प्रियस्य हृदये स्थितां भजति मन्मनो राधिकाम् ॥५०॥

मेरा मन तो उन वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी को भजता है, जिनके परम कमनीय केश बिखरे हुए हैं, जिनके चञ्चल एवं रमणीय नेत्राञ्चल हैं, जो नृत्य करती हुई भृकुटि से सुशोभित हो रही हैं तथा रति-क्रीडा में जिनका हार एवं आभूषण टूट गये हैं, जिनकी नासिका शुक नासिकावत् मनोरम है एवं प्रियतम के रति-विषयक क्रिया-कलाप का जो चातुर्यपूर्ण वचनों से पुनः-पुनः निषेध कर रही हैं और प्रिय श्यामसुन्दर के हृदय में सदैव विराजमान हैं ।

हे गह्वरवन मध्येहृदयं तव संस्थितौ वदान्यौ तौ ।
गौरश्यामलरूपौ चौरौ द्वौ मे मनोहरत ॥५१॥

(आर्यावृत्त छन्द)

('प्रिया-प्रियतम विषयक भक्ति' से भावित हृदय के उद्गार हैं –)

हे गह्वरवन ! तुम्हारे हृदय के मध्य में अत्यन्त उदार 'गौर एवं श्यामल' रूप माधुरी से सम्पन्न दो चोर विद्यमान हैं, जो मेरे मन को चुराकर ले गये हैं ।

(यहाँ गह्वरवन से चेतनवत् उलाहना दिया जा रहा है, अतः इस वन की चिन्मयता अभिव्यञ्जित हो रही है । धाम के प्रति अगाध श्रद्धा-भाव वन्दनीय है ।)

त्वं वनराज ! किशोरीचरण द्वन्द्व ममापि दर्शय भोः ।
श्रीमच्छयामलमूर्तेर्हृदियत्तापं समुद्धरति ॥५२॥

(आर्यावृत्त छन्द)

(इस पद्य में वनराज 'गह्वर' से प्रार्थना की गयी है ।)

हे वनराज ! किशोरी जू के युगल चरणों का दर्शन मुझे भी करा दो, जो 'चरण' घनश्याम श्रीकृष्ण के हृदय में विद्यमान ताप को हरण करने वाले हैं ।

('धाम' में प्रियाचरण-दर्शन कराने की क्षमता ध्वनित हो रही है ।)

नेत्रे बुभुक्षिते मे राधापदयोर्विलोकनायेह ।
तर्पय वृन्दावन मे तद्दर्शनमहिमासुधादानैः ॥५३॥

(श्रीश्यामा-चरण-दर्शन की अभिलाषा अभिव्यक्त हो रही है ।)

इस ब्रजभूमि में मेरे नेत्र श्रीराधाजी के चरणों के दर्शन करने के लिए भूखे (उत्कण्ठित) हैं, हे वृन्दावन ! श्रीचरणों के दर्शन की महिमा-सुधा के दान द्वारा मुझे तृप्त करो ।

(तीव्र भक्तियोग ध्वनित हो रहा है ।)

ममाविरास्तां वृषभानुजा सखी सुमंडले नृत्यपरा प्रियेणया ।
संरक्षितावाहुवरार्द्धचंद्रिकां विधाय पश्चात्स्खलनं विभन्यता ॥५४॥

प्रियतम श्रीकृष्ण के साथ सुन्दर रासमण्डल में नृत्य-परायणासखी, श्रीकृष्ण के समान ख्यातिवाली वृषभानुनन्दिनी भगवती राधा मेरे सन्मुख प्रकट हों, जिनके नृत्यकाल में स्खलन को रोकने के लिये श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी सुन्दर भुजाओं को अर्ध चन्द्रिकाकार बनाकर संरक्षित किया ।

क्वचित्सुपुष्पव्यजनंदधत्करे, करोति वायुं वृषभानुजामुखे ।
विलोक्य नृत्यत्पदकैश्च पश्चिमै - र्मुखं प्रियो रासगतो निषेवते ॥५५॥

रास-केलि में नृत्य करती हुई श्रीराधाजी के चरण शिथिल हो रहे हैं, ऐसा समझकर (माधव) पुष्पमय मनोरम व्यजन (पंखा) लेकर वृषभानुपुत्री के मुख पर हवा कर रहे हैं और कभी उनके श्रीमुख का अपलक अवलोकन करते हैं ।

मध्याह्ने ह्यधिकुञ्जसद्मशयितौ सख्यासुसंवीजितौ,
पर्यङ्के परिमुक्तपुष्पदलकैः संभावित स्वंगकौ ।
अन्योन्यैकदृशा निमीलित दृशौश्वासोल्लसत्कुंतला,
वौषी रे भवनेऽम्बुयन्त्रसलिलैः सिक्ते सुसेव्यौ कदा ॥५६॥

(शार्दूल विक्रीडित छन्द)

फव्वारों से निर्गत जल के द्वारा अभिसिञ्चित उशीर (खस-खस) से बने सुन्दर (कुञ्ज) भवन में मध्याह्नकाल में पर्यङ्क पर विराजमान प्रिया-प्रियतम निकुञ्ज गृह में शयन कर रहे हैं, सखी द्वारा पंखा झला जा रहा है, सुन्दर पुष्पदलों से जिनके शुभाङ्ग सुशोभित हो रहे हैं, अर्द्धनिमीलित नेत्रों से एक-दूसरे को अपलक निहार रहे हैं तथा निःश्वासों से दोनों के केश किञ्चित् हिलते हुए उल्लसित हो रहे हैं एवं भावापन्न युगल स्वरूप (मेरे द्वारा) कब सेवित होंगे ?

तौ नृत्यमानौ प्रतिबद्ध चक्षुषौ परस्परं नूपुरसिंजितांघ्रिणा ।
समागमात्संगमितौ हृदाहृदि वक्त्रेणवक्त्रे भुजतो भुजादिभिः ॥५७॥

श्रीराधा-कृष्ण नृत्य क्रीडा में निरत हैं, चरणों में नूपुर की मधुर ध्वनि हो रही है, परस्पर उनकी दृष्टि मिली हुई है, शरीर से शरीर, हृदय से हृदय, मुख से मुख तथा भुजा से भुजा समालिङ्गित हो रही है ।

गताववस्थां चलनाक्षमौजडां यथा कला कारुतरेण लेखितौ ।
स्वदर्शनार्थायमयाविलोकितौ कदात्मसख्यासुभगौ भविष्यतः ॥५८॥

(रास क्रीडा में नृत्यासक्त) प्रिया-प्रियतम (थकने अथवा रसमग्न होने के कारण) चलने में अक्षम होकर जडावस्था को प्राप्त हो गये हैं (वे ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानों) किसी कुशल चित्रकार द्वारा अभिचित्रित हों, वे दोनों सुभग स्वरूप दर्शन के लिये अपनी सहचरी के साथ कब मेरे द्वारा देखे जायेंगे ?

विदग्ध मिथुनं दृष्ट्वा रासे विवशतां गतम् ।
संस्थापयति शय्यायां ललितोन्नीयबाहुना ॥५९॥

रास-क्रीडा में परम प्रवीण युगल स्वरूप विवशता को प्राप्त हो रहे हैं और सखी ललिता अपनी भुजाओं से उठाकर उन्हें शय्या पर संस्थापित कर रही हैं ।

सगायमानां प्रविलोक्यराधिकां विमूर्छितः संपतितोति विह्वलः ।
स्वलच्छिखंडः स्फुरिताधरांचलोव्यत्यस्तवस्त्राभरणोऽपवेणुकः ॥६०॥

(कोकिल बैनी) श्रीराधिका गानकला में निरत हैं, जिनको देखकर श्यामसुन्दर अति विह्वल होकर गिर पड़े एवं मूर्च्छित हो गए हैं, उनका मोरमुकुट खिसक गया है, अधरोष्ठ स्फुरित हो रहा है, वस्त्र एवं आभूषण अस्त-व्यस्त हो गए हैं तथा वेणु हाथ से छूट गया है ।

दृष्ट्वा तथाविधं प्रेष्ठमतिकातर मानसा ।
करुणकंपसंपन्ना निधाय हृदि पश्यति ॥६१॥

प्रियतम श्रीकृष्ण को मूर्च्छित देखकर श्रीराधाजी का मन अत्यन्त व्याकुल हो गया है, करुणापूर्ण कम्पन से वे युक्त हो गई हैं और प्रियतम को हृदय से लगाकर उन्हें निहार रही हैं ।

उष्णीषं परिवध्य दक्षिणतटी नम्रंलसत्कंचुकं
ग्रीवामंडनमंडितं सुरभिभिः श्रीकुंकुमैश्चित्रितम् ।
स्थाप्यांगेशुभसूत्रकं कटितटे वध्वोत्तरीयंगले
मुक्तादामनिवेश्य सा च सुमुखी मुक्तालका संस्थिता ॥६२॥

श्रीराधाजी ने मुकुट-धारण कर लिया है, उनका वपु कोमल चोली से विभूषित हो रहा है, गले में हार धारण कर लिया है तथा सुगन्धित कुङ्कुम से श्रीविग्रह को सजाया है । कटि-प्रदेश में शुभ लंहगा धारण किया है तथा गले में उत्तरीय एवं मौक्तिक माला धारण कर अनुकूल आचार वाली सुमुखी श्यामा केशपाश को खोलकर विराजमान हैं ।

प्रेष्ठं कंचुकि शाटके प्रदधतं स्वधोरुकं चांतरं
नासाभूषणहस्तकाचवलयं ग्रैवेय कंचामलम् ।
वामांगे विनिधाय चुंबनमहाश्लेषादिकं विभ्रती
श्रीराधाममोहनी विजयते प्रेमैक लीलामयी ॥६३॥

श्रीराधाजी मनोरम चोली एवं साड़ी धारण किये हुए हैं, सुन्दर लहँगा पहने हुए हैं, नासिका में आभूषण, हाथों में दिव्य चूड़ियाँ एवं गले में निर्मल हार धारण

कर श्रीकृष्ण के वामाङ्ग में आलिङ्गन एवं चुम्बन करती हुई, मन को मोहित करने वाली, प्रेममयी लीला की प्रतिमूर्ति श्रीराधा सर्वोत्कर्षशालिनी हैं, उनकी जय हो ।

(अर्थात् उनके प्रति मैं प्रणत हूँ, यह भाव सूचित होता है ।)

श्रीमत्कुंजसुरद्रुमं मञ्जुललतां संगृह्य हस्ते स्वके ।
सव्येचांचलकं सुभंगि दधती सज्जालमालांचितम् ॥
शीर्लोऽर्द्धात् शिथिलं यथा स्थिति नयंत्येवादराद्राधिका ।
दोलायत्पदसत्तनुर्विजयते नासास्फुरन्मौक्तिका ॥६४॥

कुञ्जभवन में विराजमान श्रीराधिका जी ने अपने हाथ से श्रीसम्पन्नकुञ्ज में विद्यमान पारिजात (कल्प वृक्ष) का आलिङ्गन करने वाली मनोरम लता को पकड़ रखा है तथा वाम हस्त से सुन्दर मुक्तावली से विभूषित सुन्दर भङ्गिमाओं से युक्त साड़ी के अञ्चल को, जो कि आधे शिर से खिसक गया है, उसे यथा स्थान स्थापित करती हुई श्रीप्रियाजी का, देदीप्यमान मौक्तिक नासाऽऽभरण सुशोभित हो रहा है तथा उनका चरण एवं श्रीविग्रह चञ्चल हो रहा है; ऐसी श्रीराधिकाजी की सदा ही जय हो ।

(वे सर्वोत्कर्षशालिनी हैं, उनके प्रति मैं सादर प्रणत हूँ ।)

आंदोलमानाचययुज्जगानशाखागृहं चर्वितपर्ण खण्डम् ।
चखाद संगृह्यतमंजलौसपश्यन्मुखांभोजमधुव्रतं स्वम् ॥६५॥

श्रीप्रियाजी शाखा-गृह में झूला झूल रही हैं, उन्होंने चर्वित (आस्वादित) पान (बीड़ी) के खण्ड को मुख से उगल दिया है, प्रियानुराग रञ्जित श्यामसुन्दर ने स्वयं को प्रियाजू के मुखकमल का मधुकर मानते हुए उस पर्णखण्ड को अञ्जलि में लेकर भोग लगा लिया ।

मज्जीवातुरिहारित साऽसिततनो हृत्कंज संवासिनी ।
राजत्कोटि कलानिधि प्रविभवत्संगर्व निर्वासिनी ।

श्रीमन्मोहननामखेलनमृगव्यावंधिभूयोगुणा-
तन्मूर्द्धस्थितकेशभृंगरसिकैः संपीतपादांबुजा ॥६६॥

श्रीराधिकाजी घनश्याम के हृदयकमल में निवास करने वाली हैं, देदीप्यमान करोड़ों कलाओं की निधि के बढ़ते हुए घमण्ड को (अपनी सुषमा से) विनष्ट करने वाली हैं, सबको मोहित करने वाले मोहन नामक अपने क्रीडा-मृग को बाँधने में उपयुक्त प्रचुर गुणों से सम्पन्न हैं । श्रीश्यामसुन्दर की सुन्दर अलकावली पर मँडराने वाले रसिक-भ्रमरों के द्वारा श्रीराधाजी के चरणकमल-मकरन्द का पान किया जा रहा है ।

(अर्थात् 'प्रियतम' श्रीप्रियाजू के चरणों में सिर रखकर प्रणाम कर रहे हैं, उनके सिर पर मँडराते हुए 'भ्रमर' प्रियाजू के चरणों को कमल समझकर मकरन्द पान कर रहे हैं ।)

कुसुमसुंगफितवेणीपीनश्रोणीकुचोरूभारेण ।
त्रुट्यन्मध्येवेयंतिर्यग्ग्रीवाशनैश्चलति ॥६७॥

श्रीप्रियाजी की चोटी में सुन्दर पुष्प गुँथे हुए हैं, उनका नितम्ब प्रदेश भारी (मोटा) है, उरोज (कुचों) के अधिक भार के कारण मानों वह मध्यभाग (कटिभाग) में टूटी हुई-सी प्रतीत हो रही है तथा ग्रीवा (गर्दन) को कुछ टेड़ी (वक्र) करके मन्थर गति से चल रही हैं ।

सख्या नीतां मालां भारभियानहि नहीति चार्वंगी ।
बहुशो निषेधयंती क्वचित्प्रियेणाप्यधारयत्सार्द्धम् ॥६८॥

सखी के द्वारा लायी गई माला को भार के भय से, मनोरम अङ्गों वाली लाड़िलीजी "नहीं-नहीं" ऐसा निषेध कर रही हैं और कभी प्रियतम के साथ माला को धारण करती हैं ।

(यहाँ श्रीराधाजी के सौकुमार्य अतिशय का बोध अभीष्ट है ।)

क्रीडन्त्यानवकुंजमंजुलगृहे नीलालकालीमुखे
शाखातोन्यपतत्सु पुष्पिततरं पुष्पं सुमल्लीभवम् ।

तिर्यग्ग्रीवतयानिधायनयन प्रातं च तस्मिन् स्मितं
भ्रूभंगं दधती तदंगुलिकरेणाऽजिघ्रदा-दाय सा ॥६९॥

'श्रीस्वामिनी राधिका' नूतन कुञ्जों में निर्मित मनोरम गृह में क्रीडा-निरत हैं, उनके मुखारविन्द पर नीलवर्ण अलकावलि (केश-पंक्ति) सुशोभित हो रही है । पुष्पित-मल्लिका की शाखा से पुष्प गिर रहा है, जिसे श्रीराधारानी ने अपनी ग्रीवा (गर्दन) को कुछ टेड़ा करके अपने नेत्र-प्रान्त पर धारण कर लिया तथा मुस्कान (मन्द हास्य) एवं भ्रू-भङ्गिमा के साथ हाथ से ग्रहण कर उसे सूँघने लगीं ।

अंगुष्टतर्जनीभ्यामी रितमालोक्यपुष्पमुन्नृत्यत् ।
नासामौक्तिक मपि किं परिप्लवांग्याः नरीनर्ति ॥७०॥

'श्रीराधारानी के अङ्गुष्ठ एवं तर्जनी अङ्गुली द्वारा कम्पित (हिलाया गया) पुष्प' ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो नाच रहा हो, जिसे देखकर चञ्चल अङ्गों वाली किशोरीजी की नासिका में विद्यमान मोती भी नाचने लगा ।

नीलालकं परिविलोक्य कपोलपार्श्वे हस्तेन चासिततनुर्वृषभानुजायाः ।
संलालयत्यति सुगन्धिमद भ्रभावस्तत्कुंतलानपरिमेयरसे निमग्नः॥७१॥

वृषभानुनन्दिनी के कपोल प्रान्त पर सुरभित नीलवर्ण केश लटक रहे हैं, जिन्हें देखकर घनश्याम श्रीकृष्ण सहज भाव से अपने हाथ द्वारा (केशों को) संयमित कर रहे हैं और अपरिमित रस में निमग्न हो गए हैं ।

प्रियवक्षःस्थितमालामुत्तार्य प्रेयसी स्वहस्तेन ।
धृत्वा निजपाणितले पश्यन्ती तत्र तोलयति ॥७२॥

प्रियतम माधव के वक्षस्थल पर विराजमान माला को प्रियतमा अपने हाथ से उतारकर तथा अपनी हथेली पर रखकर अपलक निहारती हुई उसे तोलती हैं ।

नीलांबरागुंठितमुख्यगात्री वेशोन्मदश्यामकृपाविधात्री ।
लावण्य रूपामृतसारपात्री दृश्या कदा गह्वरवासदात्री ॥७३॥

जिनके कमनीय गात्र नीलाम्बर (नीले वस्त्रों) से अवगुण्ठित (ढके) हैं, वेषमाधुरी से उन्मद श्यामसुन्दर पर जो कृपा करने वाली हैं, जो असमोर्ध्व लावण्य (सौन्दर्य) रूप अमृत सार की एकमात्र पात्र हैं तथा जो गह्वरवन में वास देने वाली श्रीकिशोरीजी मेरे द्वारा कब अवलोकित होंगी ?

कदा वा खेलंत्या निजवरवरेणोन्मदकला,
कलानंदोद्गारिप्रणयरसभारेणविवशा ।
करिष्ये सद्घातं निजविमलशाट्यंचलमहो,
दधानाहस्ताभ्यांकृतसुकृत पुंजाभृशमहम् ॥७४॥

कलापूर्ण आनन्द की अभिव्यक्ति करने वाले प्रेमरस के भार (आधिक्य) से विवश हुई उत्कट मद कला से सराबोर अनन्त पुण्य करने वाली मैं (सखी) अपने विमल साड़ी के अञ्चल को अपने हाथों से पकड़कर, अपने अनुपम प्रियवर श्यामसुन्दर के साथ क्रीडा करती हुई श्रीस्वामिनी की कब हवा करुँगी ?

अर्थात् मेरा पुण्य समूह तभी चरितार्थ होगा जब मुझे उक्त सेवा का अवसर प्राप्त होगा ।

सखीवृंदवृता राधा रराज वर गह्वरे ।
तारागणैः संपरीतः शारदेंदुरिवांवरे ॥७५॥

परम रमणीय गह्वरवन में सखी-समूह से आवृत श्रीराधा ठीक उसी प्रकार सुशोभित हो रही हैं, जैसे तारागणों से आवृत (घिरा हुआ) शरद् ऋतु का पूर्ण चन्द्र आकाश में सुशोभित होता है ।

प्रियस्यवक्षःस्थलपट्टिकोपरिस्थितास्तिकाचिन्नवनागरीमणिः ।
तत्प्रेमसूत्रामलमध्यगुंफितातच्चित्रमुक्ताफललोलकच्छविः ॥७६॥

प्रियतम श्यामसुन्दर के वक्षःस्थल रूपी पट्टिका पर विराजमान कोई (श्रीराधाजी) नवनागरीमणि (चतुर-नागरियों में मणि स्वरूपा) सुशोभित हो रहीं हैं;

ऐसा प्रतीत होता है मानो श्रीकृष्ण के निर्मल प्रेमरूपी धागे के मध्य में गुँथी हुई अद्भुत मुक्तामणि की मनोरम छवि हो ।

कुचाचलेंद्रोपरिमालिकानदीन्यमज्जतात्रब्रजराजनंदनः ।
तत्तारणायेवधृतास्तिश्रृंखलासखीजनैर्पालकनामधेयका ॥७७॥

श्रीहरिप्रिया राधाजी के कुच (उरोज) पर्वत स्वरूप हैं, जिनके ऊपर विराजमान माला रूपी नदी प्रवाहित हो रही है, जिस नदी में रस-लम्पट मधुसूदन निमग्न हो रहे हैं, उनको (निमज्जित श्रीकृष्ण को) निकालने के लिये पंक्तिबद्ध सखीवृन्द ठीक उसी प्रकार प्रतीत हो रहा है मानों डूबने से बचाने के लिए नदी आदि के तट पर श्रृंखला (साँकर) हो ।

(इस श्लोक के तृतीय चरण में "**तत्तारणा...**" के स्थान पर "सुत्तारणा..." रख दिया जाए तो छन्द सुसंगत होता है ।

वंशस्थ छन्द; लक्षण - "जतौ तु वंशस्थ मुदीरितं जरौ")

पार्श्वालम्बितवक्रकेशरुचिरासिन्दूर सीमंतिनी
कस्तूरीवरबिंदुभालतिलका मुक्तालसन्नासिका ।
कंठे दर्पककंबुके निदधती मुक्तायुतैर्मालिकाम्
संगम्यद्रुम शाखिकां च दधती हस्तेन सव्येन सा ॥७८॥

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

श्रीकिशोरी जी के पार्श्व भाग में घुँघराले केश लटक रहे हैं, जिनसे वे अतिशय कमनीय लग रही हैं, उनकी मांग में सिंदूर सुशोभित हो रहा है, उनके मस्तिष्क (माथे) पर श्रेष्ठ कस्तूरी का तिलक लगा है एवं मुक्तामणि से उनकी नासिका अलङ्कृत है, शंख को भी मात देने वाले श्रीकण्ठ में मुक्तामणियों की माला धारण किये हुए हैं और अपने वाम हस्त के द्वारा उन्होंने वृक्ष की शाखा पकड़ रखी है ।

नासासंस्थितमौक्तिकद्वयमहोमाणिक्यपूर्वापरं,
लोलन्मौक्तिकराजितं छविमयां गुष्टांगुलीयांतरे ।
वामाम्भोजकरस्य चाथ नवल-क्रीडाभराच्चालय
न्त्येकेनाथ निवारितालिनिवहा कृष्णेन दृश्यास्तुमे ॥७९॥

(शार्दूलविक्रीडित छन्द)

('अहो' पद आश्चर्यसूचक है, श्रीकिशोरी की रूप-माधुरी वर्णनाऽतीत है ।) उनकी सुभग नासिका में दो मौक्तिक मणि पूर्वाऽपर रूप में उल्लसित हो रहे हैं, उनके परम सुषमामय अँगूठे एवं अङ्गुलीयों में देदीप्यमान मोती सुशोभित हैं, ये मोती श्रीराधाजी के वाम हस्त कमल में विद्यमान हैं । नित्य नवीन एवं मधुर क्रीडा से उत्प्रेरित अपने दाहिने हस्तकमल से रसलम्पट भ्रमर-समूह का निवारण करती हुयीं श्रीकिशोरीजी मेरे द्वारा कदाचित् देखी जायेंगी अर्थात् मैं उनका श्रीकृष्णचन्द्र के साथ दर्शन कर सकूँगी ?

निजहृदये प्रतिबिम्बं राधा निजानुरक्तस्य ।
किञ्चिद् उवाच हसन्ती कुतः समेतोसि संस्पृशति ॥८०॥

(आर्यावृत्त छन्द)

श्रीराधाजी ने अपने हृदय पर अपने (श्रीराधा के) प्रति अनुराग युक्त (श्यामसुन्दर) का प्रतिबिम्ब देखकर मंद हास्यपूर्वक कहा – 'कहाँ से (आकर) हृदय पर अधिष्ठित हो गए हो ?' इस प्रकार श्रीराधाजी उनका सम्यक् स्पर्श करती हैं ।

बद्धुं प्रवृत्ता निजहारतोय-त्तस्यानुविम्बं नवभूवशक्ता ।
अवेत्यदुर्गस्थितमाहचास्माद्बंधाय प्राणप्रिय न प्रयासि ॥८१॥

(उपजाति वृत्त)

श्रीकिशोरी जी अपने वक्षस्थल पर अङ्कित श्रीकृष्ण के दिव्य प्रतिबिम्ब को अपने हार से बाँधने के लिये उद्यत हुयीं किन्तु बाँधने में समर्थ न हो सकीं, तब श्रीराधारानी ने यह समझकर कि 'ये श्यामसुन्दर दुर्ग पर विराजमान हैं' बोलीं –

'प्राणप्रिय श्रीश्यामसुन्दर हमें बाँधने के लिए प्रयत्नशील हैं (निश्चय ही आप) हमारे हृदय से नहीं जाओगे ।

(प्रिया-प्रियतम का परस्पर अनुराग अतिशय रूप से अभिव्यञ्जित हो रहा है ।)

वध्नात्यसौ मालिकया करद्वयं प्रियः पदाम्भोजयुगे स्मिताननः ।
ऊचे निबद्धोहमहोसदीश्वरि-त्वंबन्धनायैव च किं प्रताम्यसि ॥८२॥

प्रियाजू के युगल चरणकमल में विराजमान मन्दहास्य युक्त (मुस्कराते हुए) प्रिय श्रीकृष्ण माला के द्वारा अपने दोनों हाथों को बाँध देते हैं और कह रहे हैं – 'हे सकल सामर्थ्यशालिनी श्रीराधे ! मैं तो आपके द्वारा बाँध ही लिया गया हूँ, आप बाँधने के लिए क्यों प्रयत्न कर रही हो या क्यों खिन्न हो रही हो ?'

"तमु-कांक्षायाम् खेदे च ।"

वपुर्मनो वागसवस्त्वयि प्रिये निर्वाञ्छिता मे सततं वदामि ते ।
त्वयैव दत्तं मम जीवनं पुनस्त्वत्पाद संस्पर्शमुखाभिलाषतः ॥८३॥

श्रीकृष्णचन्द्र प्रियाजी से कह रहे हैं – "हे प्रिये ! मेरा शरीर, मन, वाणी एवं प्राण आप में ही हैं, आप निरन्तर मेरे द्वारा नितरां एकमात्र वाञ्छनीय हो अर्थात् सर्वदा आप की इच्छा करता रहता हूँ, मैं सत्य कह रहा हूँ, आपके चरण-स्पर्श की अभिलाषा से युक्त मेरा जीवन आपके ही द्वारा दिया गया है ।"

श्रुत्वा नूपुर सिञ्जितं विहरतोः काञ्चीध्वनिं मञ्जुल,
शय्यायां स्थितयोः परस्परमुखालोकाद् धृतावस्थयोः
भूषाणां मिलनेरवं च ललितं सत्कारितं चोभयोः ।
कुञ्जद्वारि गता गता च जडतां मूर्च्छां प्रयास्ये कदा ॥८४॥

(शार्दूलविक्रीडित वृत्त है)

प्रिया-प्रियतम शय्या पर विराजमान होकर विहार कर रहे हैं, विहार निरत उनके नूपुर की झङ्कार, करधनी की मनोरम ध्वनि, आभूषणों के परस्पर मिलने से होने वाला मधुर रव हो रहा है, एक-दूसरे के मुख को अपलक निहारने में लगे हुए हैं, दोनों में परस्पर अगाध स्नेह है । कुञ्जभवन के द्वार पर जाकर (अलौकिक सुषमा का अवलोकन कर) जड़ता को प्राप्त होकर मैं कब मूर्च्छित होऊँगी ?

प्रियपाणितलेस्वकं करं विनिधायाङ्गुलिभूषणां चितम् ।
अवलोकयितुं गता गृहं मम दृश्या नव नागरी मणि: ॥८५॥

अङ्गुली-भूषण से अलङ्कृत अपने हाथ को प्रियतम श्रीकृष्ण की हथेली पर रखकर कुञ्जभवन का अवलोकन करने गयी हुई नव नागरियों की मणि स्वरूपा श्रीकिशोरीजी कब मेरे दृष्टि-पथ पर आयेंगी अर्थात् इस प्रकार के भाव से सराबोर स्वामिनी के कब दर्शन कर पाऊँगी ?

अतितृष्णमना निजप्रियां करुणा पाङ्गसुधावलेहने ।
मुकुरं निदधत्कराम्बुजे तनु श्रृङ्गारकृते निषेवते ॥८६॥

माधुर्य की अनुपम मूर्ति श्रीकृष्णचन्द्र अतीव तृष्णा पूर्ण मन से अपनी प्रियतमा श्रीकिशोरीजी को दयार्द्र एवं अमृतमयी दृष्टि से निहार रहे हैं। (ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों प्रियाजी को आत्मसात कर रहे हैं) अपने करकमल में दर्पण लेकर (प्रियाजू का) श्रृंगार करने के लिये समुद्यत हैं ।

स्वकरे सितचामरन्दधद् दयितां रत्नवरासने स्थिताम् ।
सभजत्यनुरागभावतोक्षरद् , वैस पतति गृहे क्वचित् ॥८७॥

प्राणवल्लभा श्रीराधा जी मणिजड़ित श्रेष्ठ आसन पर विराजमान हैं, प्रियतम अपने हाथ में शुक्लवर्ण चँवर को लेकर अनुरागपूर्ण भाव से स्वामिनीजू की सेवा में लगे हुये हैं, (उनकी रूप माधुरी, सौकुमार्य एवं औदार्य आदि को देखकर) कदाचित् श्रीकृष्ण कुञ्जभवन में गिर पड़ते हैं और पुनः जैसे-तैसे अपने को सम्भालते हैं ।

ललिता वाक्यं राधां प्रति

श्रीराधा के प्रति ललिता जी का कथन -

मत्पादयोः पतित्वा ब्रवीति हार्दांश्चकाकुवादान्सः ।
त्वत्सङ्गोन्मद – चित्तस्त्वदाप्तयेयं यतन् गतवान् ॥८८॥

श्रीसर्वेश्वरी से सखी ललिता कह रही हैं कि वह श्रीकृष्ण मेरे पैरों में पड़कर हृदय को लुभाने वाले काकुपूर्ण वचनों को कहते हैं, आपके सान्निध्य को प्राप्त करने के लिये उनका हृदय उन्मत्त हो रहा है और आपकी प्राप्ति के निमित्त यत्न करते हुए वह चले गये हैं ।

काकुः – "भिन्न कण्ठ ध्वनिर्धीरैः काकु रित्यभिधीयते ॥"

कण्ठ-ध्वनि को भिन्न रूप से प्रयुक्त कर जो वचन बोले जाते हैं, उन्हें 'काकु' कहते हैं ।

किं कार्यं वत राधे त्वमेव वद त्वत्स्वरूपसक्ताय ।
देयं किं मे नाप्तिं मन्यायाप्तावपि ह्यस्मै ॥८९॥

(आर्यावृत्त छन्द)

ललिता कह रही हैं – हे श्रीराधे ! अब आप ही बतायें, वह नीलमणि श्रीकृष्ण आपकी रूप- माधुरी पर अतिशय आसक्त हैं, मैं उनके लिये क्या कर सकती हूँ, मेरी कौन-सी ऐसी वस्तु है, जिसे मैं उनको नहीं दे सकती अर्थात् मेरी प्रत्येक वस्तु उनके लिये न्यौछावर है ।

विचित्र वल्लीतरु राजिराजिते, विचित्रलीलामयवा: सभाजिते ।
विदग्धराधाधवभाव पूजिते, प्रियाङ्घ्रिसल्लाञ्छनलाञ्छिताजिरे ॥९०॥

(वंशस्थ वृत्त छन्द)

गह्वरवन के विषय में –

जो विचित्र (अद्भुत) लता-पताओं एवं वृक्षों की पंक्तियों से सुशोभित है, प्रिया-प्रियतम की अद्भुत लीला-चिह्नों से जो वन सत्कृत हो रहा है, परम रसमयी लीलाओं में प्रवीण श्रीराधावल्लभ की भाव-भङ्गिमाओं से जो पूजित है तथा कृष्णप्रिया स्वामिनी श्रीराधाजू के चरणचिह्नों से जिसका प्राङ्गण अलङ्कृत हो रहा है; ऐसे श्रीगह्वरवन में मेरा मन सदा ही रम जाए । (अग्रिम श्लोक से सम्बन्ध है ।)

सखीजनोद्गीत वधूगुणोत्करे, सुवल्गुकी वादनशब्दशब्दिते ।
सामश्रुते श्रीललिताङ्घ्रिलाञ्छिते, श्रीगह्वरे मे रमतां मन: सदा ॥९१॥

जिस गह्वरवन में सखियों द्वारा प्रिया श्रीराधिकाजी के गुण-समूह का गान किया जाता है, सुन्दर वीणा की मधुर ध्वनि से जो शब्दायमान (झङ्कृत) हो रहा है, सुन्दर संगीत अथवा सामवेद की ध्वनि जिसमें सुनाई दे रही है, जो ललिता के चरणचिह्नों अथवा प्रिया-प्रियतम के ललित (मनोरम) चरणचिह्नों से विभूषित हो रहा है; ऐसे श्रीगह्वरवन में मेरा मन निरन्तर रमण करे ।

कर्पूर पूगसम्मिश्रं प्रियेणांतिसमर्पितम् ।
ताम्बूलंभक्षयन्त्यास्यं मुकुरे स्वं प्रपश्यति ॥९२॥

(अनुष्टुप् छन्द)

कपूर अथवा शुभ्र वर्ण की सुपाड़ी जिसमें मिलायी गयी है तथा प्रियतम के द्वारा निकट जाकर जो पान प्रियाजी को समर्पित किया गया है, उस पान का चर्वण (आस्वादन) करती हुई श्रीकिशोरीजी अपने मुखारविन्द को दर्पण में निहार रही हैं ।

प्रियहस्ताद् गृहीतेन स्वयं प्रोञ्छति वाससा ।
ओष्ठप्रान्तं किशोरीयं कदा यास्यति दृक्पथम् ॥९३॥

(अनुष्टुप् छन्द)

जो करवस्त्र (रुमाल) प्रियतम के हाथ से लिया गया है, उस वस्त्र से श्रीकिशोरी अपने ओष्ठप्रांत को स्वयं पोंछ रही हैं, यह कब मेरे दृष्टिपथ में आयेंगी ?

गृहीत्वा ललिता हस्तं हस्तेन सव्य कन्धरे ।
स्ववाहुं दक्षिणं न्यस्य प्रयाति वनकेलये ॥९४॥

ललिताजी ने अपने हाथ से प्रियतम का हाथ पकड़कर श्रीराधाजी के वाम स्कन्ध पर रख दिया तथा श्रीराधाजी अपनी दाहिनी भुजा को श्रीकृष्ण के कन्धे पर रखकर वन-क्रीडा के लिये पधार रही हैं ।

उन्मुच्य केशान्यमुनान्ति विभ्रती , तरोरधस्तुंवुरवल्लकीं करे ।
हरिन्मणीं वै तिलकं च भालके सुगायतिप्रेष्टचकोरदर्शना ॥९५॥

(वंशस्थवृत्त छन्द)

श्रीप्रियाजी ने अपना केशपाश खोल दिया है, वे यमुना के निकट तट पर वृक्ष के नीचे विराजमान हैं, उनके हाथ में तुम्बुरु (वाद्य यन्त्र) वीणा सुशोभित हो रही है, जो 'वीणा' मणियों की दिव्य कान्ति को भी तिरस्कृत कर रही है । श्रीराधा जी के भाल पर सुन्दर तिलक सुशोभित हो रहा है, परम कमनीय चकोर के नेत्रों के समान नेत्र-कान्ति वाली स्वामिनीजी सुन्दर संगीत-गान में निरत हो रही हैं ।

किशोर युगलं स्फुरत्कनकनीलरत्नप्रभं
निकुञ्ज-वरमन्दिरेसुरतकेलिरङ्गोन्मुखम् ।
सुवर्णलतिकामिलत्स्फुटतमालयोरुपमा-
न्दधन्मुखरभूषणं मम मनोरमं मोदते ॥९६॥

अति कमनीय निकुञ्जभवन में युगल किशोर (श्रीप्रिया-प्रियतम) विराजमान हैं । श्रीप्रियाजी की देह-कान्ति चमकते हुये नीलमणि सदृश है । युगल किशोर सुरत-क्रीडा (एकान्त क्रीडा) सम्पादन हेतु तत्पर हो रहे हैं । प्रिया-प्रियतम की शोभा ठीक उसी प्रकार हो रही है जैसे सोने की लता परम कमनीय तमाल के वृक्ष का आलिङ्गन किये हुए हो । युगल सरकार ने शब्दायमान अलङ्कारों को धारण कर रखा है जो कि अतीव मनोहर हैं, यह छवि मुझे आनन्दमग्न कर रही है ।

किसलयतल्पे जल्पन्नवलांखेलोन्मुखींवार्ताम् ।
मग्नं प्रेमसमुद्रे किशोरयुगलं मनोहरति ॥९७॥

कोमल पल्लवों की शय्या पर विराजमान युगल-किशोर परस्पर वार्तालाप करते हुये, नवीन क्रीडा के अनुरूप व्यवहार कर रहे हैं, दोनों प्रेम के सागर में डूबे हुये हैं; ऐसी युगल छवि मेरे मन को हरण कर रही है ।

मधूपभोगसम्फुल्लकुसुमव्रातमञ्जुले ।
निलीयमानावालीभिवनेऽन्वेष्यौ कदा ब्रुवे ॥९८॥

(अनुष्टुप् छन्द)

वसन्त ऋतु के उपभोग-आगमन से विकसित हो रहा है कुसुमों का समूह, जिनसे मनोरम लगने वाले कुञ्ज-वन में प्रिया-प्रियतम छिपे हुये हैं, 'सखियों के द्वारा वे कब खोजे जायेंगे?' यह मैं क्या कह सकूँगी ?

मेघपुष्पकणभ्राजत्कपोलौ रक्तवाससौ ।
पल्लवा वरणेनैव मया छाद्यौ कदाचतौ ॥९९॥

(अनुष्टुप् छन्द)

श्रीराधा-कृष्ण रक्त वर्ण के वस्त्रों से सुसज्जित हैं, 'मेघ' पुष्प के समान मनोरम जल-बिन्दुओं को बरसा रहा है, जल-कणों से युगल सरकार के कपोल अतीव अलङ्कृत हो रहे हैं, क्या मुझे कभी ऐसा अवसर मिलेगा जब मैं पल्लवरूपी छत्र के द्वारा उन दोनों को आच्छादित करूँ अर्थात् भीगने से बचाऊँ ।

नमस्येहं लोकं नवहुनिगमं ते बहुविधं,
सताम् श्लाघ्यं शुद्धं सुखदहरिभक्तिं च निपुणाम् ।
परं क्रीडा कुञ्जे वन भुवि सदा श्यामहृदये,
कदा द्वंद्वं जाने रुचिरललिता हस्तकलितम् ॥ १००॥

(शिखरिणी वृत्त छन्द)

(श्रीराधा-माधव भाव से भावित एवं सखी भावापन्न ग्रन्थकार अपने श्रेय-प्रेय एवं ध्येय को अभिलक्षित करते हुए मनोभाव की अभिव्यक्ति करते हुये कह रहे हैं –)

मैं इस संसार को प्रणाम करती हूँ तथा सज्जनों द्वारा प्रशंसनीय-शुद्ध-अनेक प्रकार के शास्त्र-ज्ञान को भी नमस्कार है, साथ ही आनन्ददायिनी हरिभक्ति भी वन्दनीय है जो कि सब कुछ देने में सक्षम है ।

किन्तु मेरी तो एकमात्र यही अभिलाषा है कि श्यामा-श्याम के हृदय-स्वरूप 'गह्वरवन' के क्रीडा-कुञ्ज में मनोरम श्रीललिताजी के हाथ द्वारा सेवित राधा-माधव की जोड़ी को न जाने कब देखूँगी ?

श्रीराधायाः चरण कमले प्रीतिरास्तां परा मे,
तिष्ठेन्नित्यं हृदय वसतौ श्रीपतिः वासुदेवः ।
सच्छास्त्रेष्व – प्रतिहतरया सन्निविष्टाऽस्तु बुद्धिः,
गोपालोऽयं बुधपदरतिं याचते कृष्णकान्ताम् ॥

विनयावनतः

गोपाल जिज्ञासुः

इसी वृषभानु नगरी में गह्वर वन नामक सुन्दर वन है, जोकि युगल विग्रह श्रीराधाकृष्ण की दिव्य जोड़ी से और अधिक मनोरम बन गया है, जिस वन को भगवती राधिका ने स्वयं अपनी केलिविलास की दिव्य सामग्री से प्रकट किया है। (7)

हे वनराज ! किशोरी जू के युगल चरणों का दर्शन मुझे भी करा दो। जो चरण घनश्याम श्रीकृष्ण के हृदय में विद्यमान ताप को हरण करने वाले हैं। (52)

श्री
राधा

प्रेषक

श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान

गह्वर वन, बरसाना